डाक पंजीयन क्र. म.प्र. भोपाल/162/2018–20
पोस्टिंग दिनाँक : 15 मार्च 2020, पृष्ठ सं. 44
प्रकाशन दिनाँक: 15 मार्च 2020

आर.एन.आई.पं.क्र. MP HIN/2004/12178

ISSN 2319-3107

मूल्य ₹ 25/-

आंचलिक पत्रकार

455

सितंबर, 1981 से प्रकाशित

पत्रकारिता का पर्यावरणी दायित्व

चुनौतियाँ और अपेक्षित कदम

पत्रकारिता, जनसंचार और विज्ञान संचार की शोध पत्रिका

http://www.anchalikpatrakar.com

छत्तीसगढ़ में गांधी के ग्राम स्वराज की पहल के लिए श्री बघेल का अभिनन्दन

मुख्यमंत्री द्वारा श्री रमेश नैयर और श्री महावर का सम्मान

'कर्मवीर के सौ साल' पुस्तक और चार पोस्टरों का विमोचन

छत्तीसगढ़ की धरती पर महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज की अवधारणा को मूर्त रूप देने में जुटे मुख्यमंत्री श्री भूपेश बघेल का सप्रे संग्रहालय के संस्थापक संयोजक विजयदत्त श्रीधर, वरिष्ठ विधायक एवं पूर्व मंत्री श्री सत्यनारायण शर्मा, वरिष्ठ पत्रकार श्री रमेश नैयर, साहित्यकार-पत्रकार गिरीश पंकज एवं निदेशक डा. मंगला अनुजा ने मानपत्र भेंट कर अभिनन्दन किया।

छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री श्री भूपेश बघेल ने 24 फरवरी को रायपुर में सप्रे संग्रहालय द्वारा अभिकल्पित चार पोस्टरों का विमोचन किया। इन पोस्टरों में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, भारतीय संस्कृति और अध्यात्म के परम प्रवक्ता स्वामी विवेकानन्द और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महानायक नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के धर्म विषयक मंतव्य को दर्ज किया गया है। इसके अलावा आजादी की लड़ाई का अलख जगाने वाले दादा माखनलाल चतुर्वेदी के ऐतिहासिक पत्र 'कर्मवीर' की शताब्दी के उपलक्ष्य में प्रकाशित संदर्भ ग्रन्थ 'कर्मवीर के सौ साल' का भी विमोचन किया।

दरअसल, श्री बघेल को 24 जनवरी को 'कर्मवीर' के शताब्दी समारोह में भाग लेने के लिए भोपाल आना था। परंतु अपरिहार्य कारणों से उनकी यात्रा स्थगित हो गई थी। ***..... निरंतर पृष्ठ 43***

ISSN 2319–3107

सितंबर, 1981 से प्रकाशित

मार्च – 2020

वर्ष–39, अंक–7, पूर्णांक–455

एक प्रति ₹ 25/– वार्षिक ₹ 250/–

आंचलिक पत्रकार

पत्रकारिता, जनसंचार और विज्ञान संचार की शोध पत्रिका

अनुक्रम

1.	गांधीवादी पत्रकारिता के सौ साल का दस्तावेज	डा. सुशील त्रिवेदी	5
2.	छत्तीसगढ़ की लोक कला और संस्कृति के अध्येता श्री निरंजन महावर	रमेश नैयर	8
3.	पत्रकारिता का पर्यावरणी दायित्व	अरुण तिवारी	11
4.	विवाद और साख की प्रतीक	उमेश चतुर्वेदी	20
5.	गांधी ही विकल्प हैं !	श्री हरिवंश से साक्षात्कार	25
6.	विश्व रेडियो दिवस और रेडियो लाइसेंस	अरविन्द कुमार सिंह	34
7.	खबर खबरवालों की	संजय द्विवेदी	39

“ भ्रमर कड़ी से कड़ी लकड़ी को भी सहज में ही छेद डालता है, किन्तु कोमल कमल-कलिका में वह फँस जाता है। भले ही उसके प्राण निकलने की नौबत क्यों न आ जाए, पर वह उस कमल के दलों को नहीं भेद सकता।

– सन्त ज्ञानेश्वर ”

E-mail
sapresangrahalaya@yahoo.com
editor.anchalikpatrakar@gmail.com
☎ (0755) 2763406, मोबा. 9425011467
7999460151 https://www.facebook.com/vijaydutt.shridhar.9

संपादकीय पत्र व्यवहार
संपादक, 'आंचलिक पत्रकार'
माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान
मेन रोड नं. 3, भोपाल (म.प्र.) 462003

'आंचलिक पत्रकार' के स्वामित्व एवं अन्य विवरण के संबंध में घोषणा

1.	प्रकाशन का नाम	– 'आंचलिक पत्रकार'
2.	प्रकाशन का स्थान	– भोपाल
3.	प्रकाशन की अवधि	– मासिक
4.	मुद्रक का नाम	– विजयदत्त श्रीधर
	क्या भारतीय नागरिक हैं	– हाँ
	पता	– माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, मेन रोड नं. 3 भोपाल(म.प्र.) – 462 003
5.	प्रकाशक का नाम	– विजयदत्त श्रीधर
	क्या भारतीय नागरिक हैं	– हाँ
	पता	– माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, मेन रोड नं. 3 भोपाल(म.प्र.) – 462 003
6.	संपादक का नाम	विजयदत्त श्रीधर
	क्या भारतीय नागरिक हैं	– हाँ
	पता	– माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, मेन रोड नं. 3 भोपाल(म.प्र.) – 462 003
7.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचारपत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों	– माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, मेन रोड नं. 3 भोपाल(म.प्र.) – 462 003

मैं, विजयदत्त श्रीधर, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

दिनाँक – 28-02-2020

विजयदत्त श्रीधर
प्रकाशक के हस्ताक्षर

पाती

सप्रे संग्रहालय की मासिक प्रस्तुति के रूप में प्रकाशित 'आंचलिक पत्रकार' का मैं नियमित पाठक हूँ। इस पत्रिका को मैं सप्रे संग्रहालय की आंचलिक पत्रकार वेबसाइट पर नियमित रूप से पढ़ता हूँ। अभी हाल ही में 'कर्मवीर' के सौ वर्ष पूर्ण होने पर पत्रिका का प्रकाशित अंक बहुत ही मनभावन लगा। अंक में संकलित समस्त सामग्री रोचक, ज्ञानपूर्ण एवं ओजपूर्ण लगी। कह सकते हैं कि हिंदी पत्रकारिता की यह महत्वपूर्ण पत्रिका है।

जिस प्रकार आप समय समय पर विभिन्न पत्रिकाओं की जानकारी 'आंचलिक पत्रकार' में प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार देश से प्रकाशित कालजयी पत्रिकाओं जैसे हंस, जागरण, माधुरी, चांद, मतवाला, प्रताप, मर्यादा आदि के अंकों को लेकर कोई अंक निकालें, जिससे इन पत्रिकाओं को पढ़ने वाले पाठक, शोधार्थी लाभ ले सकें।

कृष्ण वीर सिंह सिकरवार
राजीव गांधी प्रौद्योगिकी वि.वि., भोपाल – 462033
(krishanveer74@gmail.com)

नई किताब

'कर्मवीर के सौ साल'

गांधीवादी पत्रकारिता के सौ साल का दस्तावेज

■ **डा. सुशील त्रिवेदी**

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' की घोषणा कर भारत को अँगरेजों के राज से मुक्त कराने का आह्वान किया था। किन्तु उनका यह आह्वान भारत के गाँव-गाँव तक नहीं पहुँच सका। भारत को आजादी दिलाने के आंदोलन को देशव्यापी बनाने का कार्य गांधी युग में हुआ जो सन 1919 में रॉलेट एक्ट के विरोध के साथ शुरू हुआ था। सन 1919 में ही जलियाँवाला बाग कांड हुआ जिसने पूरे देश को झकझोर दिया था। सितम्बर 1920 में कोलकाता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था जिसमें महात्मा गांधी के द्वारा प्रस्तुत अहिंसात्मक असहयोग की नीति को स्वीकृति मिली थी। इसके बाद ही भारत के गाँव-गाँव तक असहयोग आंदोलन शुरू हो गया और गांधी जी का प्रभाव देश की समग्र चेतना पर पड़ा।

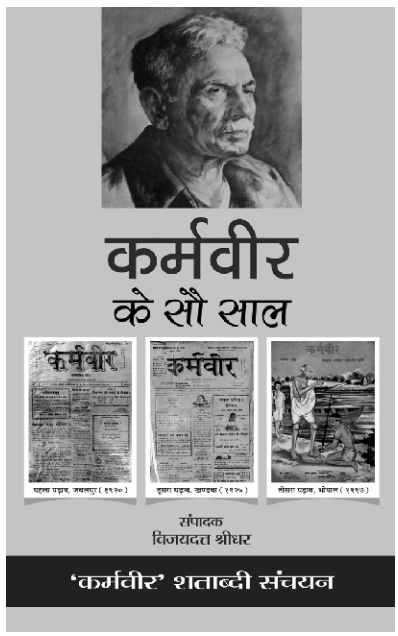

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान पत्रकारिता के द्वारा राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने के अभियान में तत्कालीन मध्यप्रांत अग्रणी रहा था। जब लोकमान्य तिलक देश में स्वराज्य की अलख जगा रहे थे तब उनके शिष्य के रूप में पं. माधवराव सप्रे ने 1907 में 'हिन्दी केसरी' का प्रकाशन और संपादन कर राष्ट्रीय चेतना से संपन्न तेजस्वी और ओजस्वी पत्रकारिता का उदाहरण प्रस्तुत किया था। मध्यप्रांत में स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी नेता के रूप में पं. सप्रे स्थापित थे। इसके साथ ही वे पत्रकारिता और साहित्य के शीर्ष नायक भी थे। उन्होंने ही 1908 में माखनलाल चतुर्वेदी की पहचान राष्ट्रीय विचारधारा से ओत-प्रोत युवा लेखक के रूप में की थी।

यह माना जाता है कि 1920 में कोलकाता में हुए कांग्रेस के अधिवेशन से हिन्दी पत्रकारिता के उन्नयन का भी प्रारंभ हुआ। इसी अधिवेशन में हिन्दी की चर्चा राष्ट्रभाषा के रूप में होने लगी और हिन्दी में राजनीतिक पत्रिका का नया युग शुरू हुआ। देश की स्वतंत्रता के लिए संगठित लोकमत तैयार करने और स्वतंत्रता संग्राम के आदर्शों का

प्रचार करने के लिए मध्यप्रांत के जबलपुर नगर से एक समाचार पत्र निकालने की योजना तैयार की गई और इसके संपादन के लिए सप्रे जी के नाम पर सहमति बनी। बहरहाल, सप्रे जी ने एक ऐसी योजना पहले ही बना रखी थी और उसके क्रियान्वयन के लिए पं. माखनलाल चतुर्वेदी का नाम तय कर रखा था।

सप्रे जी की सलाह पर चतुर्वेदी जी के संपादन में जनवरी 1920 में 'कर्मवीर' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। जबलपुर से 'कर्मवीर' का प्रकाशन 1920 से 1924 तक हुआ और फिर बंद हो गया। सप्रे जी और गणेशशंकर विद्यार्थी की सलाह पर चतुर्वेदी जी ने अप्रैल 1925 से 'कर्मवीर' का प्रकाशन खण्डवा से पुन: प्रारंभ किया। चतुर्वेदी जी के संपादन में जुलाई 1959 तक 'कर्मवीर' निकलता रहा। फिर उनके छोटे भाई बृजभूषण चतुर्वेदी के संपादन में वह 1977 तक निकलता रहा। एक बड़ी घटना के रूप में अगस्त 1997 से विजयदत्त श्रीधर के संपादन में भोपाल से इसका पुन: प्रकाशन प्रारंभ हुआ।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम को गति देने, युवा पीढ़ी को राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत करने और समग्र रूप से देश के मनोबल को बढ़ाने में पं. चतुर्वेदी के संपादन में 'कर्मवीर' का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। आजादी के बाद देश को विकास की दिशा में गांधीवाद का अनुगमन करते हुए बढ़ने की प्रेरणा देने का कार्य तो 'कर्मवीर' ने किया ही और उसके साथ ही हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने का कार्य भी किया।

'कर्मवीर' को महात्मा गांधी का आशीष प्राप्त था। यह उल्लेखनीय है कि 1938 में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने सम्मति में यह कहा था कि ''पिछले चौदह वर्षों से 'कर्मवीर' राष्ट्रीय महासभा के झंडे को ऊँचा रखे है और प्रति सप्ताह हमारे देशवासियों को प्रेरणादायक संदेशों से अनुप्रेरित करता रहा है।''

विख्यात उर्दू साहित्यकार श्री रघुपति सहाय (फिराक गोरखपुरी) ने 'कर्मवीर' के विषय में लिखा था - ''मुझे याद आता है.... जब देश गुलाम था तो 'कर्मवीर' में पं. माखनलाल चतुर्वेदी के लेख मेरे और मेरे जैसे लाखों देशवासियों के दिलों में गुलामी के खिलाफ ऐसा जोश पैदा कर देते थे जिसे भुलाया नहीं जा सकता। कम से कम मैं तो तब से अब तक भुला नहीं सका हूँ, जब से देश गुलाम हुआ है तब से सत्तर-अस्सी बरसों तक अँगरेजी भाषा में देश प्रेम के समर्थन और गुलामी के विरोध में कई करोड़ शब्द बोले गए और लिखे गए, लेकिन वे सब हवा में विलीन होकर रह गए.... 'कर्मवीर' में माखनलाल जी के लेख अब तक कानों और दिलों में गूँज रहे हैं.... उनके लेखों को पढ़ते समय ऐसा मालूम होता था कि आदि शक्ति शब्दों के रूप में अवतरित हो रही है या गंगा स्वर्ग से उतर रही है। यह शैली हिन्दी में ही नहीं, भारत की दूसरी भाषाओं में भी बिरले ही लोगों को नसीब हुई। मुझ जैसे हजारों लोगों ने अपनी भाषा लिखने की कला माखनलाल जी से ही सीखी।''

श्री विजयदत्त श्रीधर ने 'कर्मवीर' के प्रकाशन के 100 वर्ष पूर्ण होने पर एक महत्वपूर्ण रचनात्मक उपक्रम के रूप में 'कर्मवीर के सौ साल' शीर्षक ग्रंथ का प्रकाशन किया है। इस 'कर्मवीर' शताब्दी संचयन में श्रीधर जी ने 'कर्मवीर' के प्रकाशन के तीनों पड़ावों की भूमिका बताई है और उसके साथ 'कर्मवीर' में इस ऐतिहासिक कालखण्ड में प्रकाशित क्रांतिकारी टिप्पणियों को संकलित किया है। इस प्रकाशन का महत्व कुछ विशेष सामग्री के संचयित होने से बढ़ गया है, विशेषकर पं. गोविन्द राव हर्डीकर की पुस्तक 'पं. माधवराव सप्रे' से 'कर्मवीर साप्ताहिक पत्र के आयोजन' से संबंधित अंश और पं. माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा लिखित टिप्पणियों 'जब मैंने कर्मवीर का घोषणा पत्र भरा' और 'मेरा पाप और प्रायश्चित'। श्री श्रीधर ने इस ग्रंथ के महत्व को बढ़ाते हुए

पं. चतुर्वेदी द्वारा सन 1927 में भरतपुर में आयोजित हिन्दी संपादक सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिए गए उद्‌बोधन और 1943 में हरिद्वार में आयोजित अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षीय अभिभाषण को सम्मिलित किया है। पं. चतुर्वेदी के ये दो अभिभाषण हिन्दी पत्रकारिता और हिन्दी भाषा और साहित्य की तत्कालीन स्थिति का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। हमारे लिए महत्वपूर्ण बात ये है कि पं. चतुर्वेदी ने इन दो अभिभाषणों में जिन समस्याओं और चुनौतियों को रेखांकित किया है वे हमारे लिए प्रकारान्तर से आज भी प्रासंगिक और विचारणीय हैं।

'कर्मवीर के सौ साल' में पं. चतुर्वेदी द्वारा लिखित टिप्पणियों से भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का मर्म उजागर होता है। इतना ही नहीं, इन टिप्पणियों में लोकतंत्र, शिक्षा, पत्रकारिता, भारतीय अर्थव्यवस्था, भारतीय समाज की तत्कालीन परिस्थितियों और उसकी शक्तियों तथा कमजोरियों को अत्यन्त सहज और प्रवाहमान भाषा में अभिव्यक्त किया गया है।

यह माना गया है कि पत्रकारिता समकालीन इतिहास और सामाजिक विज्ञान का त्वरित लेखन है। इस लिहाज से देखें तो 'कर्मवीर' की टिप्पणियाँ एक ओर तो अपने समय का इतिहास अभिलिखित करती हैं तो दूसरी ओर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक नवजागरण की भूमिका स्पष्ट करती हैं। इतना ही नहीं, ये टिप्पणियाँ हिन्दी साहित्य पर गांधी युग के प्रभाव का एक श्रेष्ठ उदाहरण भी हैं। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य दोनों के लिए ही पं. चतुर्वेदी की भाषा सरलता, सहजता और अर्थमयता के साथ प्रवहमानता का मानदण्ड स्थापित करती है। उनके गद्य में नये विचारों और वैज्ञानिक सोच को जिस सहजता से अभिव्यक्त किया गया है वह हिन्दी भाषा के क्रमशः संस्कारित और समृद्ध होने का प्रमाण है।

स्मरणीय

'कर्मवीर' को वर्तमान में जीवंत और नैतिक मूल्यों से सम्पन्न पत्रकारिता का उदाहरण बनाने का श्रेय श्री श्रीधर को है। 'कर्मवीर' की सौ साल की यात्रा के तीसरे कालखण्ड में श्री श्रीधर का नायकत्व उल्लेखनीय है। इस ग्रंथ में श्री श्रीधर के कुछ लेख संकलित किए हैं। उन्होंने 'मोहन से महात्मा' शीर्षक लेख में महात्मा गांधी के जीवन चरित पर प्रकाश डाला है और 'कर्मयोगी पं. माधवराव सप्रे' शीर्षक लेख में भारत की पत्रकारिता और हिन्दी साहित्य में सप्रे जी के योगदान को उजागर किया है तथा 'आओ, बनाएँ पानीदार समाज' शीर्षक लेख में भारतीय संस्कृति, जल के महत्व और समकालीन विज्ञान चेतना में प्रकृति के संरक्षण के व्यावहारिक मार्ग को बताया है।

वैसे तो किसी भी समाचार पत्र के लिए यह गर्व की बात है कि उसका प्रकाशन अपनी शताब्दी मनाएँ। हिन्दी भाषा के पत्र के लिए जो एक मिशन के रूप में निकला और अब भी एक मिशन बना हुआ है, यह एक अतिरिक्त गरिमामय उपलब्धि है। 'कर्मवीर के सौ साल' के संपादक श्री श्रीधर ने इस ग्रंथ के माध्यम से हिन्दी पत्रकारिता की उपलब्धि को पूरी विषयपरकता के साथ प्रस्तुत किया है। यह ग्रंथ केवल एक समाचार पत्र का इतिहास नहीं है, बल्कि भारत और भारती की गौरव गाथा है, पं. माखनलाल चतुर्वेदी के संघर्ष और जीवन दर्शन का आलेख भी है, पत्रकारिता और साहित्य, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और लोकतांत्रिक भारत की विकास यात्रा की समीक्षा भी है।

(Email : drsushil.trivedi@gmail.com)

छत्तीसगढ़ की लोक कला और संस्कृति के अध्येता श्री निरंजन महावर

■ रमेश नैयर

श्री निरंजन महावर

महावर जी की धरोहर के लिए आभार

छत्तीसगढ़ की लोक कला और संस्कृति, खासतौर से आदिवासी संस्कृति के एकनिष्ठ अध्येता श्री निरंजन महावर ने अपने जीवन का बड़ा भाग कला-संस्कृति की साधना के लिए समर्पित कर दिया था। उन्होंने तद्विषयक साहित्य का विपुल संग्रह किया था। वे स्वयं इन विषयों के निष्णात लेखक थे। उनके सुपुत्र श्री मनीष महावर ने सप्रे संग्रहालय की व्यवस्था को परखकर पूर्ण आश्वस्त होने के बाद यह संग्रह माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल को सौंप दिया है। पिताश्री की धरोहर की सुरक्षा और आने वाली पीढ़ियों के ज्ञान-लाभ के लिए उसकी उपलब्धता सुनिश्चित करने को श्री मनीष महावर ने अपना दायित्व माना। उन्होंने रायपुर से यह साहित्य संग्रह अपने ही खर्च से भोपाल पहुँचाया। हम मनीष जी और महावर परिवार की इस भावना का अभिनन्दन करते हैं और आभार मानते हैं।

निरंजन महावर जी से लगभग छह दशकों का परिचय रहा। उनके पिताश्री उमराव लाल प्रतिष्ठित व्यापारी थे। रायपुर, कुरुद, धमतरी और जगदलपुर में उनकी चावल मिलें थीं। मेरे तीन मामा रायपुर में अनाज के आढ़तिए थे। विभाजन के बाद वे रायपुर पहुँच गए थे। उनका उमराव लाल जी के यहाँ आना-जाना रहता था। उन्हीं के साथ मैं भी कभी-कभार गुरुनानक चौक के पास उनके निवास पर चला जाता। मैं छत्तीसगढ़ कालेज में पढ़ने लगा और निरंजन महावर जी शायद दुर्गा आर्ट्स कालेज में पढ़ते थे। उनके परिवार का काफी बड़ा व्यापार था। अध्ययन के बाद निरंजन महावर जी को पारिवारिक व्यापार सँभालने के लिए उमराव लाल जी ने प्रेरित किया होगा। मेरा निरंजन महावर जी से निकट का परिचय कालेज के समय से था, परंतु मैं उसे आत्मीय नहीं कह सकता। जब वह जगदलपुर की राइसमिल की देख-रेख के लिए चले गए तो उनसे परिचय प्रगाढ़ होता गया। वहाँ उनकी रुचि व्यापार से अधिक बस्तर के आदिवासियों के हस्तशिल्प में जाग्रत हो गई, जो रफ्ता-रफ्ता घनी होती गई। फिर वह उसके मोह में रमते चले गए।

वे आदिवासी शिल्प, जीवन शैली और उनकी निश्छलता पर इस कदर मुग्ध हो गए कि उसी के अध्ययन-मनन और उस पर लेखन में जुड़ गए। आदिवासी शिल्प का संग्रह उनका पूर्णकालिक शौक बन गया। यह वह समय था जब छोटे-बड़े व्यापारी, राजनेता और नौकरशाह आदिवासियों का निर्मम शोषण किया करते थे। नमक अकेली ऐसी खाद्य सामग्री थी जिस पर आदिवासी की निर्भरता व्यापारियों पर रहती थी। व्यापारी एक काठा (नापने का पात्र) नमक के बदले उतनी ही चिरौंजी उनसे ले लिया करते थे। सन 1960 के

दशक तक आदिवासियों की आवश्यकताएँ बहुत कम होती थीं। स्त्री-पुरुष बहुत कम वस्त्र पहना करते थे। नागर समाज से उनका संपर्क और संवाद भी कम ही होता था। सन 1960 के दशक के आरंभिक वर्षों तक तो वे शहरी मनुष्यों को देखते ही घने जंगलों में छिप जाया करते थे। वे देवी दंतेश्वरी के उपासक थे। बस्तर के पूर्व नरेश प्रवीरचंद्र भंजदेव का बहुत सम्मान करते थे। उसके दो बड़े कारण थे, पहला तो यह कि उन्हें दंतेश्वरी देवी का मुख्य उपासक माना जाता था। बस्तर में दशहरा आदिवासियों का सबसे बड़ा पर्व होता था। आदिवासी शिल्पी दशहरे के रथ के निर्माण में भक्ति-भाव से लगे रहते थे। रथ पर दंतेश्वरी के मुख्य पुजारी के नाते बस्तर के राजा प्रवीरचंद्र भंजदेव सवार होते थे। 25 मार्च 1966 को राजनीतिक रंजिश के कारण शासन के निर्देश पर जगदलपुर के राजमहल में घुस कर पुलिस द्वारा उनकी हत्या कर दिए जाने के बाद बस्तर के दशहरे की पारंपरिक भव्यता फीकी पड़ती गई। तब महावर जी ने बातचीत में मुझे कहा था बस्तर की शांति और मस्ती को बड़ी चोट पहुँची है। अब बस्तर पहले जैसा नहीं रहेगा। मेरी भी यही मान्यता थी। तब से बस्तर पर लिखते समय उनसे चर्चा कर लेने का मैंने नियम-सा बना लिया था। बस्तर के शोषण और वहाँ की संपदा के दोहन से वह आहत रहा करते थे। आदिवासियों के जन्मजात हुनर के वह कायल थे। उन्होंने आँखों देखी एक घटना सुनाई, एक पेड़ पर एक साँप को लिपटा हुआ देखकर एक आदिवासी किशोर ने निशाना लगाकर तीर चलाया। तीर सहित साँप नीचे आ गिरा। किशोर ने एक पैर से साँप के फन और दूसरे से उसकी पूँछ को दबा लिया फिर कंधे पर रखी टँगिया से उसके दोनों हिस्से को काट दिया कुछ देर छटपटाने के बाद साँप ने दम तोड़ दिया। आदिवासी किशोर ने आसपास से सूखी पत्तियाँ और छोटी-छोटी टहनियों का ढेर बनाकर उसमें आग लगाकर साँप को भून लिया। फिर उसके टुकड़े किए, अपनी अंटी में रखा थोड़ा-सा नमक छिड़क कर बड़े स्वाद से उसे खाने लगा। महावर जी उसकी भोली मुस्कान पर मुग्ध हो गए और कहने लगे कि तीरंदाजी के आदिवासी के इस दैनंदिन हुनर की शिनाख्त करके आधुनिक प्रशिक्षण से माँजकर 'आरचरी' (धनुर्विद्या) के ओलंपियन तैयार किए जा सकते हैं।

आदिवासी किशोर-किशोरियाँ जिस तेजी के साथ पर्वतों पर चढ़ते और जंगलों में लंबी दूरियाँ पैदल चलते हुए चालीस-पचास किलोमीटर दूर लगे बाजार तक अपनी जरूरत का सामान खरीदने जाते या वन में शिकार करते, उसके अनेक आँखों देखे रोचक-रोमांचक वृत्तांत महावर जी सुनाते। उन सबको तब लिख लेने की जो दीर्घजीवी उपयोगिता होती, उसका एहसास अब होता है। उनके साथ बीसियों बार बस्तर के विभिन्न भागों में जाने के अवसर मुझे मिले। सन 1960 का दशक बीतते-बीतते वह आदिवासियों के भविष्य को लेकर चिंता करने लगे थे। कहते, देखो ये राजनेता यूरोपीय देशों और अमेरिका के धनाढ्य लोगों को बस्तर में निरंतर कम होते जा रहे वन्य प्राणियों के शिकार के लिए बुला रहे हैं। उसे उन्होंने नोट बटोरने का बड़ा धंधा बना लिया है। बस्तर का वह आदिवासी जो शिकार के बूते पर अच्छी पौष्टिक खुराक लिया करता था अब उससे धीरे-धीरे वंचित होता जा रहा है। प्रोटीन के अभाव में कमजोर भी होता जा रहा हैं। तब एक प्रभावशाली नेता ने घने वनों में शेर-चीते और अन्य वन्य प्राणियों के शिकार के लिए बाकायदा एक कंपनी खोल रखी थी। अब वह राजनेता नहीं हैं और न ही उस कंपनी का कोई वजूद है, इसलिए जानते हुए भी उनका नामोल्लेख नहीं करना चाहता।

महावर जी ने बस्तर के काष्ठ शिल्प और बैलमेटल के हस्तशिल्प को सीधे आदिवासी शिल्पियों से खरीदकर उनका संग्रह शुरू कर दिया। उनकी तलाश में बस्तर के भीतरी क्षेत्रों में भी जाते। बीच-बीच में वह जब भी रायपुर आते मुझे खबर कर देते। मैं उनके गुरुनानक चौक स्थित आवास पर पहुँच जाता। नयी कलाकृतियाँ जो वे

बस्तर से खोज कर लाते मुझे बड़ी ललक से दिखाते। आयु में वह मुझसे बड़े थे इसलिए निकटता बढ़ जाने के बाद भी मैं सदा उनका सम्मान करता था। उन्हें बस्तर के साथ ही संपूर्ण आदिवासी समाज और उनकी कला पर लिखी गई पुस्तकों के संग्रह का भी शौक था। आदिवासी जीवन और शिल्प संबंधी अनेक दुर्लभ पुस्तकें उनके निजी संग्रह में थीं। जब भी कोई नई पुस्तक खोज कर लाते मुझे घर बुलाकर दिखाते। सप्ताह में एक-दो बार उनके आवास पर नयी पुस्तकों और कलाकृतियों पर चर्चा भी होती।

श्री निरंजन महावर आदिवासी कला-संस्कृति और लोक जीवन के गहन अध्ययन-विवेचन के साथ ही महत्वपूर्ण जानकारी समाज तक पहुँचाने के लिए नियमित लेखन भी करते थे। आदिवासी संसार पर उन्होंने शासकीय और गैर सरकारी शोध पत्रिकाओं में काफी समय तक लेखन किया। उसी लेखन के आधार पर अनेक देशों के लोक-कला विशेषज्ञ उनके पास आया करते थे। उनमें से कुछ के साथ महावर जी के संवाद के दौरान मुझे भी उपस्थित रहने का सौभाग्य मिला।

महावर जी ने जो पुस्तकें लिखीं, उनमें से कुछ के नाम हैं -

- बस्तर ब्रॉन्जेस : ट्रायबल रिलीजन एंड फोक आर्ट
- पण्डवानी : ए फोक थिएटर बेस्ड ऑन इपिक महाभारत
- माच : ए फोक थिएटर आफ सेंट्रल इंडिया
- परफॉर्मिंग आर्ट आफ छत्तीसगढ़
- आर्ट एंड क्राफ्ट आफ छत्तीसगढ़
- मुरिया ट्राइब इट्स कल्चरल परफॉर्मिंग आर्टस
- कल्चरल स्टडी आफ उराँव एंड मुंडा ट्राइब्स
- भारतीय लोकनाट्य
- समग्र, गोंड जनजातीय सांस्कृतिक अध्ययन
- लोकरंग : छत्तीसगढ़
- छत्तीसगढ़ की शिल्पकला

अनुवाद

- जनजातीय मिथक, उड़िया आदिवासियों की कहानियाँ (वेरियर एलविन)
- अभी भी छह पुस्तकों की पांडुलिपियाँ उनके सुपुत्र श्री मनीष ने प्रकाशन के लिए दे रखी हैं।

अन्य प्रकाशन

- जनजातीय और लोक कलाओं पर चार,
- लोकनाट्यों पर आठ, जनजातीय अध्ययन पर चार,
- मोनोग्राफ सहित लोकगीत, लोक गाथाएँ आदि पर चार किताबें रची हैं।

महावर जी बस्तर से लौट कर जब स्थायी रूप से रायपुर में बस गए तो उनका काफी समय पुस्तकों तथा कलाकृतियों की देख रेख में बीत जाता था। सन 1982 में मुझे पत्रकारिता में बेहतर संभावनाओं के अवसर मिले तो मैं करीब एक दशक तक पहले चंडीगढ़ और फिर दिल्ली में रहा। चूँकि रायपुर के जहाज का पंछी बन गया था। इसलिए जब रायपुर से दैनिक भास्कर के प्रकाशन का निर्णय रमेशचंद्र अग्रवाल जी ने लिया तो मुझे उसके संपादन का दायित्व सौंप दिया गया। फिर से महावर जी से प्राय: प्रतिदिन मुलाकात और संवाद का सिलसिला शुरू हो गया। उन दिनों के अंतरंग संस्मरणों की संख्या इतनी बड़ी है कि उन्हें एक लेख में समेटा नहीं जा सकता। उनकी पुस्तकों और कलाकृतियों के संग्रह को उनके ज्येष्ठ पुत्र मनीष महावर ने बड़ी श्रद्धा से सहेजकर रखा। उनका समाज में यथोचित उपयोग हो सके इसके लिए मनीष निरंतर उपयुक्त सार्वजनिक संस्थान की खोज में जुटे रहे। स्वर्गीय पिता जी द्वारा छह दशकों तक चुन-चुन कर संग्रहीत लगभग 6000 पुस्तकें जब श्री मनीष ने माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल को देने का निर्णय किया तो बहुत अच्छा लगा। यह महत्वपूर्ण निर्णय लेने से पहले श्री मनीष स्वयं सप्रे संग्रहालय की व्यवस्था देखने के लिए भी गए थे। अपने पिता की स्मृति को विद्वत समाज में अक्षुण्ण रखने का इससे बेहतर और क्या उपयोग हो सकता था ?❑

पत्रकारिता का पर्यावरणी दायित्व

चुनौतियाँ और अपेक्षित कदम

■ अरुण तिवारी

पर्यावरणी पत्रकारिता में सातत्य की जरूरत इसलिए है, चूँकि आपदा के वक्त सूचना का अपना खास महत्व है। मीडिया सतत सक्रिय हो, तो समुद्री तूफान से बचा जा सकता है। जंगल की आग से जंगली जीवों को बचाने जिम्मेदारों को लापरवाह नहीं रहने के लिए चेताया जा सकता है। कीटनाशकों के अवैज्ञानिक प्रयोग के प्रति लापरवाह बाजार पर लगाम और किसान की समझ बनाना संभव है।

दुनिया की कमोबेश सभी सांस्कृतिक आस्थाएँ और इंसानी सभ्यताएँ मानती रही हैं कि प्रकृति एक सम्पूर्ण इकाई है; इंसान, इसका एक अंश मात्र है। यह मान्यता स्थल मण्डल, जल मण्डल, वायु मण्डल के बिना जैव मण्डल की अस्तित्व की संकल्पना नहीं करती। यह मान्यता, जैविक और अजैविक संघटकों की अन्तक्रियाओं के अंतरसम्बन्धी समुच्चय को मिलाकर प्रकृति का एक चलचित्र प्रस्तुत करती है। इस चलचित्र में रचना और विध्वंस, एक-दूसरे की अनुगामी प्रक्रिया हैं। हिमयुग, ताप-वृद्धि, समुद्र का बढ़ना, प्रजातियों का बड़े पैमाने पर सर्वनाश, नये जीवाणु-वनस्पतियों का जन्म, ठेठ मरुभूमि सहारा में हरियाली का लौटना, द्वीप-डेल्टा-नगरों का समुद्र में लय हो जाना, नदियों वाले केरल और बिहार में सुखाड़ की चिंता और सुखाड़ वाले राजस्थान में बाढ़ के मंजर; आस्ट्रेलिया की जंगली आग का ढाई करोड़ एकड़ क्षेत्रफल में फैलाव.... कोई अजूबी घटनाएँ नहीं। बड़े-बड़े मौसमी बदलाव, टेढ़ी चाल वाली पृथ्वी के सहज प्रभाव हैं। दूसरे के स्थानीय संसाधनों पर कब्जा, सोने की लंका की दौड़ वाले युग में बेघर विस्थापितों की संख्या का लगातार बढ़ते जाना, इंसान का वन्य जीव तथा मवेशियों को बेघर करना, वन्य जीवों और मवेशियों द्वारा इंसानों की सुरक्षा-समृद्धि को खतरे में ला देना.... मनुस्मृति का प्रलय खण्ड गवाह है कि ये सब भी पहली बार नहीं हो रहा।

बकौल महात्मा गांधी, जंगलों के साथ जो कुछ कर रहे हैं, वह प्रतिबिम्ब है कि हम अपने और एक-दूसरे के साथ क्या कर रहे हैं। वैज्ञानिक प्रमाण हैं कि पिछले 50 करोड़ सालों में पाँच बार प्रलय हुई है। 125 करोड़ साल पहले महाप्रलय हुई। उस महाप्रलय में 95 प्रतिशत प्रजातियाँ समाप्त हो गईं। शेष बची पाँच प्रतिशत ने फिर नयी प्रजातियाँ रचीं। 84 लाख योनियाँ!! भूगोल ने नया आकार ग्रहण किया। ये सब पारितंत्र के नियमानुसार ही हुआ। इसी नियमानुसार दी गई हर चुनौती वापस लौटती है।

अपेक्षा करती चुनौतियाँ

लौटी हुई तीन वर्तमान चुनौतियाँ ऐसी हैं, जिनमें हम इंसान कुछ कर सकते हैं : प्रथम यह वर्तमान कालखण्ड में बहुत कुछ जितनी तेजी से घटित हो रहा है, वह असहज है। पिछले 200 सालों में वायुमण्डल में ताप वृद्धि 1.01 डिग्री हुई है। वैज्ञानिक अनुमान, अगले मात्र 80 वर्षों में इसके बढ़कर तीन डिग्री अधिक हो जाने का आँकड़ा पेश कर रहे हैं। हम आँकड़े पर शक कर सकते हैं; किंतु फिलहाल हम तापमान वृद्धि दर को शून्य नहीं सकते। हाँ, इसकी रफ्तार सुस्त अवश्य कर सकते हैं। ऐसा इसलिए, चूँकि इस तेजी में हमारी भी भूमिका है। करने योग्य यह प्रथम कदम है। दूसरी चुनौती यह है कि इसके दुष्प्रभाव से बचने के लिए हमें जितनी तेजी से बदलना चाहिए, हम बदल नहीं रहे। हम बदलें। तीसरी यह कि अपनी जीवनशैली, तकनीक, आर्थिकी में हम जो कुछ बदल रहे हैं, वे बदलाव भी अंतत: चुनौती में तेजी लाने वाले ही साबित हो रहे हैं। हम प्राकृतिक पर्यावरण अनुकूल बदलाव का चुनाव करें।

पर्यावरणी पत्रकारिता का दायित्व

ऐसे में पत्रकारिता का दायित्व यह है कि उपभोग की अति की जगह सादगी-स्वावलम्बन को सम्मान दिलाए। वह न्यूटन की गति के तीसरे नियम और चार्ल्स डार्विन के सिद्धांत की सीख याद दिलाए; हमें बताए कि हम मर सकते हैं, किंतु कार्बन नहीं। हवाई कार्बन, वापस जमीन में लौटता ही लौटता है। पत्रकारिता हमें एहसास कराए कि प्रकृति, औद्योगिक-व्यावसायिक परिसरों तथा शासकीय-प्रशासकीय क्षेत्रफलों में बाँधा जा सकने वाला भूगोल अथवा तात्कालिक हितों को साधने वाला सामान मात्र नहीं है। जंगलों को सूखा, बीमारी, तूफान तथा बाढ़ से कुदरत बचाती है। किंतु जंगलों को बर्बाद कर रहे हम बेवकूफों को तो कुदरत भी नहीं बचा सकती। आतंकवाद, सांप्रदायिक उन्माद और असम के नागरिकता संघर्ष का स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों से रिश्ता बताना जरूरी है।

जरूरी है कि ऐसी सूचनाओं और उनके विश्लेषणों को संबंधित वर्ग तक पहुँचाएँ, जो बताते हैं कि इस पर्यावरण विनाशक तेजी की वजह क्या हैं? दोषीकर्ता तथा कर्म कौन-कौन से हैं? वे दोष सुधार को बाध्य कैसे हों? क्या बदलाव अपेक्षित हैं? उन बदलावों को व्यवहार में उतारने में कौन-कौन और क्या-क्या भूमिका निभा सकते हैं? इसके लिए शिक्षित और प्रेरित करना भी पत्रकारिता के ही कार्य हैं, वह भी बिना डराए, बिना उत्तेजित किए। क्या पत्रकारिता ये कर रही है? कुछ खास विज्ञान पत्रिकाओं को छोड़ दें, तो क्या न्यूयार्क में हुई शिखरवार्ता में नन्हीं ग्रेटा थनबर्ग के भावनात्मक भाषण, साक्षात्कार और एक छोटी-सी नाव में यात्रा से अधिक कुछ सभी दर्शकों-श्रोताओं या पाठकों तक पहुँचा? उपग्रहों के पृथ्वी के करीब से गुजरने के समाचार में तबाही की बेबुनियाद आशंका को जोड़कर पेश करने में चैनलों की दिलचस्पी को क्या कहें?

नहर, नदी, नदी जोड़, बाढ़, पनबिजली, कचरा-पानी परिवहन, ओजोन परत, दबे कार्बन-हवाई कार्बन का अंतरसंबंध, भूजल-सतही जल अंतरसंबंध, वन-वनवासी का रिश्ता, मौसम और जलवायु का फर्क, अकाल तथा सुखाड़ का फर्क, कार्बन-कितना नुकसानदेह, कितना जरूरी? प्रकृति क्या? पर्यावरण क्या? उन्नति बनाम विकास क्या?.... आदि को लेकर अनेक भ्रांतियाँ हैं; प्रायोजित भ्रम हैं। भ्रमों को दूर करना भी पत्रकारिता का दायित्व है। इस दायित्वपूर्ति के लिए सतत सक्रियता, पर्यावरणी पत्रकारिता की जरूरत है। किंतु क्या यह सच नहीं कि हमारी पर्यावरणी रिपोर्टिंग अभी भी प्राकृतिक दुर्घटनाओं, योजनाओं-परियोजनाओं के उद्घाटन अवसरों, आंदोलनों, अध्ययनों और

विशिष्टजनों के जारी बयानों के सामने आने पर ही सक्रिय होती है ?

पर्यावरणी पत्रकारिता में सातत्य की जरूरत इसलिए भी है, चूँकि आपदा के वक्त सूचना का अपना खास महत्व है। मीडिया सतत सक्रिय हो, तो समुद्री तूफान से बचा जा सकता है। जंगल की आग से जंगली जीवों को बचाने जिम्मेदारों को लापरवाह नहीं रहने के लिए चेताया जा सकता है। कीटनाशकों के अवैज्ञानिक प्रयोग के प्रति लापरवाह बाजार पर लगाम और किसान की समझ बनाना संभव है।

राज, समाज अथवा आर्थिक शक्तियों को चुनौतियों के प्रति संजीदा तथा जवाबदेह बनने को प्रेरित एवं बाध्य किए बगैर समाधान संभव होता दिख नहीं रहा। अकेले विज्ञान यह नहीं कर सकता। यदि पत्रकारिता, शिक्षण, विज्ञान, न्यायतंत्र और स्वयंसेवी जगत आपस में हाथ मिला लें, तो यह संभव है।

विज्ञान की शक्ति और बेबसी का विरोधाभास

विज्ञान की शक्ति और बेबसी का विरोधाभास यह है कि वह प्राकृतिक चुनौतियों को समझा तो सकता है, किंतु समाधानों को लागू नहीं करा सकता। गौर फरमाइए कि 20वीं सदी उस छठे दशक के बाद से प्राणदायी जलवायु विरोधी वैश्विक कारगुजारियों में ज्यादा तेजी आई, जब वैज्ञानिकों ने पुख्ता तौर पर घोषणा कर दी कि तापमान वृद्धि में हवाई कार्बन के तत्कालीन प्रमुख उत्पादक यानी उद्योग का सबसे अधिक योगदान है। औद्योगिक विकास का सपना, मानव तथा मवेशी श्रम आधारित क्षेत्रों में भी मशीनीकरण की दौड़, कम्प्यूटर क्रांति, वाया आर्थिक उदारवाद गरीब आबादी की जरूरत के प्राकृतिक संसाधनों पर अमीर देशों और कम्पनियों द्वारा कब्जे की वैश्विक हवस, प्राकृतिक उत्पादों पर एकाधिकार की होड़, अधिकाधिक उपभोग को बढ़ावा देने और शान समझने के चरित्र की व्यापक स्वीकार्यता – क्या ये सभी कुछ बीते 50 साल की दास्ताँ नहीं हैं ? ये सब इसके बावजूद हुआ कि पर्यावरणी जागरूकता हेतु पहला अंतरराष्ट्रीय आह्वान, वर्ष–1972 के स्टॉक होम सम्मेलन में किया गया। प्रथम विश्व पर्यावरण दिवस आयोजन का भले ही वर्ष 1974 में हुआ हो, किंतु वैश्विक स्तर पर पर्यावरण दिवस मनाने संबंधी संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्देश वर्ष 1972 में ही जारी कर दिया गया था। पर्यावरण यानी परि+आवरण। पर्यावरण शब्द का उल्लेख तथा प्रचार का शुरुआती दशक भी 20वीं सदी का छठा दशक ही है।

गौर यह भी कीजिए कि अधिकांश पर्यावरणी अध्ययन केन्द्र, पत्रिकाएँ, संगठन और कार्यकर्ता, इसी दशक के बाद से अस्तित्व में आने शुरू हुए। भारत में पर्यावरण इंजीनियरिंग का प्रथम विभाग (आई आईटी–कानपुर) इसी दशक में स्थापित हुआ। भारत के प्रथम प्रशिक्षित पर्यावरण इंजीनियर प्रोफेसर गुरुदास अग्रवाल इसके प्रमुख बने। श्री एस.पी. गोदरेज ने इसी दशक में प्रकृति वन्यजीवों के संरक्षण हेतु अभियान चलाकर गौरव पाया। बाद में 'बर्डमैन आफ इण्डिया' के नाम से विश्व में विख्यात हुए श्री सालिम अली (पूरा नाम : सालिम मुईनुद्दीन अब्दुल अली) द्वारा पक्षी विज्ञान के महत्व पर प्रसिद्ध लेख, पुस्तक एवं व्याख्यान भी इसी दशक में सामने आए। केरल की साइलेंट वैली नेशनल पार्क की पारिस्थितिकी को खतरे में डालने वाली एक पनबिजली बाँध परियोजना को रोकने के लिए किए गए उनके संघर्ष के कारण, उन्हें प्रथम भारतीय बाँध विरोधी का तमगा भी दिया जा सकता है। यूँ उस परियोजना के विरुद्ध विश्व वन्यजीव कोष तथा इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन आफ नेचर ने प्रस्ताव ग्रहण किया था। तत्कालीन प्रधानमंत्री

श्रीमती इंदिरा गांधी ने परियोजना पर रोक लगाई और अगले ही दिन 'प्रोजेक्ट टाइगर' शुरू करने का निर्णय लिया। सन 1972 के इसी वर्ष में वन्यजीव संरक्षण अधिनियम पारित किया गया। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष पर्यावरण संबंधी पहली जनहित याचिका, वर्ष-1984 में पेश हुई। मामला ईंट भट्टे, काँच उद्योग, तेल रिफाइनरी और वाहन ईंधन से प्रदूषित हो रहे ताजमहल को बचाने का था। इस तरह इससे जुड़े श्री एम.सी. मेहता हुए भारत के प्रथम हरित वकील। श्री मेहता द्वारा दायर मुकदमे के नतीजे में ही उच्च शिक्षा में पर्यावरण को एक विषय के रूप में पढ़ाना और परीक्षा पास करना अनिवार्य हुआ। राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण का गठन भी इसी दिशा में उठे कदमों का सुपरिणाम है।

पर्यावरणी पत्रकारिता की चुनौतियाँ

आकार की दरकार : क्रिस्टोफर कोलम्बस, राल्फ वाल्डो, हेनरी डेविड, 19वीं सदी के जॉन बर्राह, जॉनमूर, 20वीं सदी में एल्दो लियोपोल्ड, भारतीय पर्यावरणविद सालिम अली से लेकर अनुपम मिश्र जैसे अंतरराष्ट्रीय नामचीनों पर निगाह डालें, तो प्रकृति लेखन का वैश्विक इतिहास काफी समृद्ध रहा है। 12 अप्रैल, 1982 को प्रयाग में 30 लोगों की प्रतिभागिता वाली संगोष्ठी से प्राप्त प्रेरणा से 'पर्यावरण दर्शन' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। विज्ञान पर्यावरण केन्द्र के संस्थापक (स्वर्गीय) श्री अनिल अग्रवाल द्वारा भारत के पर्यावरण पर प्रथम नागरिक रिपोर्ट भी 1982 में प्रकाशित हुई। स्वयं को पर्यावरण का प्रथम हिंदी मासिक घोषित करती 'पर्यावरण डाइजेस्ट' का प्रकाशन, वर्ष 1987 से आज तक हो रहा है। प्रकृति-पर्यावरण पर कई पत्र-पत्रिकाएँ और पोर्टल हैं। अर्घग्यम् का वाटर पोर्टल तथा विज्ञान पर्यावरण केन्द्र का अँगरेजी 'डाउन टू अर्थ' अब हिंदी में भी है। दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर, नवभारत टाइम्स में तक कई अखबारों, चैनलों ने पर्यावरणी मसलों पर अभियान चलाए हैं। जमीनी रिपोर्ट की बेहतर क्षमता और सहज पहुँच के कारण, आंचलिक तथा सोशल मीडिया में पर्यावरणी लेखन और वीडियो रिपोर्ट पेश करने वालों की संख्या भी लगातार बढ़ ही रही है। राष्ट्रीय मीडिया में जहाँ संपादकों की निजी रुचि है, वहाँ स्वतंत्र पत्रकारिता को थोड़ी जगह मिलने लगी है। पर्यावरणी मसलों पर संपादकीय भी लिखे जाने लगे हैं। पत्रकारिता ने कई पर्यावरणी कार्यकर्ताओं को समाज का हीरो बनाया है; बावजूद इसके देखें तो प्रथम चुनौती तो यही है कि भारत में पर्यावरण पत्रकारिता, आज तक प्रकृति प्रेमी आकार नहीं ले सकी है। इसका एक कारण, विशेषज्ञ पत्रकारों की कमी है। अन्य कई देशों में शुरुआत हो चुकी है, लेकिन भारतीय मीडिया शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थानों में पर्यावरणी पत्रकारिता का कोई पूर्णकालिक पाठ्यक्रम नहीं है। मीडिया प्रतिष्ठानों में पर्यावरण संपादक का कोई पद नहीं है।

प्राथमिकता की प्रतीक्षा : भारत के प्रिंट मीडिया में पर्यावरण समाचारों को मात्र 0.5 प्रतिशत जगह मिलने का आँकड़ा है। टीवी चैनलों में पर्यावरणी मसलों की कवरेज वर्ष 2005 में 0.4 प्रतिशत थी। यह प्रतिशत बढ़ रहा है। किंतु अन्य विषयों की तुलना में पर्यावरण की हिस्सेदारी का यह आँकड़ा, अभी भी बेहद कम है। पर्यावरणी लेखन और रिपोर्ट अभी नदी-पानी-ताप संकट पर ही ज्यादा केन्द्रित है। समुद्र, वनस्पति, वन्यजीव, वायु, जीवाणु, मिट्टी समेत प्रकृति से जुड़े तमाम मोर्चों पर चुनौतियाँ लगातार बढ़ रही हैं। डिस्कवरी, जियोग्राफी और एनीमलप्लेनट जैसे टी.वी. चैनलों को छोड़ दें, तो इन खास चुनौती विषयों पर लेख-रिपोर्टिंग अभी तक भारतीय पत्रकारिता की प्राथमिकता नहीं बन सकी है। यह दूसरी चुनौती है।

प्रतिबद्धता का द्वन्द्व : प्रकृति, एक जटिल

संजाल है। इसके मसले, सिर्फ पर्यावरण विज्ञान पढ़कर नहीं समझे जा सकते। इसके लिए राज, समाज, आर्थिकी, इंजीनियरिंग, कानून, सामग्री विज्ञान समेत अनेक प्रकार के विज्ञान और व्यवहार के अंतरसंबंधों की समझ, आकलन तथा सतत निगरानी आवश्यक है। प्रत्यक्ष साक्षात्कार किए बगैर नदी, जंगल, जंगली जीव, परिंदों आदि के महत्व, जरूरत और चरित्र को नहीं समझा जा सकता। इसके लिए पर्याप्त धन, धीरज, संवेदना, समर्पण और प्रतिबद्धता चाहिए। यही कारण है कि पर्यावरणी जर्नलिज्म और एक्टिविज्म के बीच की लक्ष्मण रेखा अक्सर धुंधली पड़ जाती है। कई पर्यावरणी कार्यकर्ता-अध्ययनकर्ता-वकील-अफसर, पत्रकारों की भाँति लिख रहे हैं। कई स्वतंत्र पत्रकार, नौकरीपेशा संपादक-पर्यावरणी कार्यकर्ता की भूमिका में उतरे हैं। हिंदी पट्टी के लिखते रहे जिन नामों से मैं परिचित हूँ, उनमें सर्वश्री सुन्दरलाल बहुगुणा, अनुपम मिश्र, अनिल अग्रवाल, सुनीता नारायण, राजेन्द्र सिंह, हिमांशु ठक्कर, संदीप पाण्डेय, विमलभाई, संजय पारिख, कृष्णगोपाल व्यास, सुबोध नन्दन शर्मा तथा वेंकटेश दत्ता आदि पहली श्रेणी के हैं। सर्वश्री डा. खुशहाल सिंह पुरोहित, भारत डोगरा, ज्ञानेन्द्र रावत, अभिलाष खाण्डेकर, सिराज केसरव वन्यजीव पत्रकार प्रेरणा सिंह बिन्दा समेत कई अन्य को आप दूसरे वर्ग में रखें। सर्वश्री प्रमोद भार्गव, राजकुमार कुम्भज, सोपान जोशी, पंकज चतुर्वेदी, अभय मिश्र, स्वतंत्र मिश्र, आदि को आप विशुद्ध पर्यावरणी लेखक-पत्रकार की श्रेणी में ले सकते हैं। किंतु मीडिया प्रतिष्ठान, उनके यहाँ नौकरी करने वाले पत्रकारों को पत्रकारिता के साथ-साथ पर्यावरण कार्यकर्ता की भूमिका भी निभाने दें; क्या यह सहज संभव है ? यह तीसरी चुनौती है।

गलत अवधारणा से उपजी टकराहट : गौर कीजिए कि 'पर्यावरण' शब्द अँगरेजी के 'एन्वायरन्मेन्ट' का हिंदी अनुवाद है। पारिस्थितिकी संदर्भों में 'एन्वायरमेन्ट' शब्द का प्रयोग पहली बार 1956 में हुआ। 'एन्वायरन्मेन्ट' शब्द की उत्पत्ति, 'एन्वायरन्स' शब्द से हुई। 'एन्वायरन्स' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग, कार्लाइल द्वारा जर्मन शब्द 'उमेगबंग' के अर्थ को फ्रांसीसी भाषा में व्यक्त करने के लिए किया गया। एन यानी अंदर और वायरन्स यानी घेरा अर्थात वे परिस्थितियाँ, इंसान जिनसे घिरा है। पूर्व में 'एन्वायरन्स' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में होता रहा है। क्या अजीब स्थिति है कि हम जिस पर्यावरण को चुनौती मान रहे हैं, उसका शब्दार्थ खुद, इंसान द्वारा स्वयं को प्रकृति के दूसरे अवयवों से अलग स्थापित करने की मानसकिता का द्योतक है!! इसी शब्दार्थ ने सम्पूर्ण प्रकृति को नैसर्गिक बनाम मानव निर्मित-संचालित पर्यावरण में विभाजित किया। इन विभाजनकारी अव्ययों की प्रतिद्वन्द्वता, विकास की नवीन अवधारणा और नैसर्गिक समृद्धि के बीच टकराहट सुनिश्चित करती है। यह टकराहट, पर्यावरणी पत्रकारिता को विकास का बाधक बनाकर पेश करती है। यह चौथी चुनौती है। पर्यावरण की बजाय, प्रकृति का प्रतिनिधि पत्रकार हुए बगैर इससे निपटना असंभव है।

नापाक गठजोड़ : असंतुलन का विकास : चुनौती यह है कि कारपोरेट जगत इस टकराहट की परवाह नहीं कर रहा। दूसरे भी इसकी परवाह न करे; इसके लिए वह लोगों की दृष्टि को व्यावसायिक करने की आर्थिक वैचारिकी पर काम कर रहा है। कारपोरेट जगत, वाया उपभोग उत्पादों का बाजार बढ़ाने के लिए चिकित्सक, वैज्ञानिक, वास्तुविद, जीवन शैली निर्धारक पेशेवर, भ्रामक अध्ययनों और पर्यावरणी जागरूकता अभियानों को औजार बना रहा है। सरकारों, अंतरराष्ट्रीय कर्जदाता और दानदाता एजेंसियों के साथ कारपोरेट के नापाक इरादे वाले गठबंधनों के कारण, सरकारों की प्रकृति हितैषी नीयत पर भी कारपोरेट हितैषी नीतियाँ ही भारी पड़

रही हैं। भारत सरकार के कुल घोषित बजट (2018-2019) से ज्यादा धनराशि, 63 भारतीय अरबपतियों के पास है। ऑक्सफैम की रिपोर्ट के अनुसार, भारत की एक फीसदी आबादी के पास, इसकी 70 फीसदी आबादी से चार गुना अधिक धनराशि है। अमीरी-गरीबी के बीच की यह खाई निरन्तर बढ़ रही है। यह असंतुलित विकास है। यह असंतुलन, प्राकृतिक और भौतिक पर्यावरण के बीच का भी असंतुलन है और अपने पेशे और मिशन के बीच झूला झूलती वर्तमान पत्रकारिता का भी। यह पाँचवीं चुनौती है।

हितों का कॉकटेल : गड्डमगड मीडिया : मैड्रिड में हुए जलवायु सम्मेलन को पहले ब्राजील में होना था। ब्राजील, जल-संकट और संघर्ष के कारण बड़ी संख्या में उजड़कर यूरोप के देशों में पहुँचे विस्थापितों का देश है। चिंता पर समाधान खोजने के लिए ब्राजील को उचित मानकर ही उसे सम्मेलन का मेजबान बनाया गया था। किंतु ब्राजील के नये राष्ट्रपति जनाब बोल्सोनारो ने ब्राजील में जलवायु सम्मेलन करने से मना कर दिया था। श्रीमान बोल्सोनारो को प्राकृतिक संसाधनों के व्यावसायीकरण का पैरोकार माना जाता है। प्रकृति विरुद्ध पैरोकार राष्ट्रपति को भारत ने गणतंत्र दिवस परेड-2020 का मुख्य अतिथि बनाया। क्या हमारी पत्रकारिता ने उद्योग-सत्ता संजाल की इस मेजबानी के पर्यावरणी निहितार्थ को पाठकों के समक्ष रखा? सेंटर फार मीडिया स्टडीज की रिपोर्ट के मुताबिक, 85 फीसदी अमेरिकी मौजूदा मीडिया कवरेज की तुलना में पर्यावरण पर अधिक और संजीदा जगह चाहते हैं; बावजूद इसके अमेरिकी मीडिया में पर्यावरण पर कवरेज घट रही है। अमेरिकी राष्ट्रपति श्रीमान डोनाल्ड ट्रम्प, अपने देश के व्यावसायिक हितों के आगे अंतरराष्ट्रीय जलवायु सम्मेलनों और समझौते की लगातार उपेक्षा कर रहे हैं। भारत का राष्ट्रीय मीडिया भी अमेरिका के साथ भारतीय रिश्ते को लेकर हमेशा ताली पीटता हुआ नजर आ रहा है। रोम जल रहा है, नीरो बाँसुरी बजा रहा है। खुद सोचिए कि हिम्मत कहाँ से आए?

पर्यावरणी पत्रकारिता का दायित्व है कि वह इस प्रकृति विपरीत गठबंधन की नीति और नीयत का खुलासा करे। किंतु पर्यावरणी ही नहीं, यह पत्रकारिता के हर पन्ने के समक्ष पेश सबसे बड़ी चुनौती है कि बाँध-बिल्डर, पानी-आरओ बेचने वाले मीडिया में पैसा लगा रहे हैं। हमारा राष्ट्रीय मीडिया, अब पूरी तरह कारपोरेट अंदाज के हाथों द्वारा संचालित हो रहा है। वे अपने प्रकाशनों-प्रसारणों को मीडिया हित और कारपोरेट हितों का कॉकटेल बनाकर पेश कर रहे हैं। संपादकों को इस कॉकटेल उत्पाद के प्रोडक्ट मैनेजर की भूमिका में रूपान्तरित होने को बाध्य कर रहे हैं। मीडिया की यह गड्डमगड स्थिति, छठी चुनौती है।

उत्पाद को आगे, मूल कारणों को पीछे धकेलने का एजेण्डा : यही कारण है कि कारपोरेट हितों के खिलाफ उठी आवाजों के लिए राष्ट्रीय मीडिया में बहुत जगह नहीं है। इसके उलट, राष्ट्रीय मीडिया कारपोरेट हितों और राजनीतिक दलों के एजेण्डों को खबर बनाकर परोस रहा है। दिल्ली वायु प्रदूषण के मूल कारणों से ध्यान भटकाकर, पराली-पराली चिल्लाने का राजनीतिक तथा मीडिया नाद, इस बीच एयर प्यूरीफायर कम्पनियों के बड़े विज्ञापन तथा प्यूरोफायर लगाने का न्यायिक आदेश-गठजोड़ का ताजा प्रमाणिक उदाहरण है। प्रदूषित नदियों के समाधान में अविरलता की प्राथमिक माँग के लिए प्राण त्यागने वालों को मीडिया ने कितना समर्थन दिया? हम पहले से मौजूद मल का शोधन नहीं कर पा रहे। किंतु समाधान के रूप में और अधिक शौचालय.... और अधिक सीवेज पाइप लाइनें ला रहे हैं। आरओ प्यूरीफायर और बोतलबंद पानी का विकल्प पेश कर रहे हैं। बाढ़ के वेग और सुखाड़ की आवृत्ति में आती तेजी के मूल कारण भिन्न हैं।

किंतु सरकारें, नदी जोड़ जैसे कर्जदार बनाने और भूगोल का विनाश करने वाले विकल्प को आगे बढ़ाने की भरपूर कोशिश कर रही हैं। क्या इससे समस्या के मूल कारणों का निवारण हो जाएगा ?

दरअसल, अब पर्यावरणी चुनौतियाँ, उनका समाधान पेश करने संबंधी जागरूकता, संघर्ष और आंदोलनों को सरकार और बाजार ने क्रमश: महँगे प्रोजेक्ट (परियोजना) और मुनाफाखोर प्रोडक्ट्स (उत्पाद) में तब्दील करना सीख लिया है; अत: यह पता ही नहीं चलता कि पत्रकारिता का निभाया धर्म कब जाकर बाजार-सरकार एजेण्डे का औजार बन जाएगा। यह सातवीं चुनौती है। ऐसे विकल्पों को लेकर बेहद सतर्क और विवेकपूर्ण विश्लेषण को तैयार रहना ही इसका समाधान है।

नियोजित खौफ : विश्वसनीयता बढ़ाने के घटते मौके : कहना न होगा कि राष्ट्रीय मीडिया के पत्रकार अपने पेशे और मिशन के बीच संतुलन साधने में असफल साबित हो रहे हैं। एक कारण, नियोजित खौफ भी है, जिसके चलते 2005 से 2016 के बीच पर्यावरणी मसलों के 40 पत्रकारों को उनकी रिपोर्टिंग के कारण जान से हाथ धोना पड़ा। गौर कीजिए कि यह संख्या अफगानिस्तान युद्ध रिपोर्टिंग के दौरान मारे गए पत्रकारों की संख्या से ज्यादा है। म्यांमार के उत्तरी सागाइंग डिवीजन पर रिपोर्ट करने वालों को हिंसा का सामना करना पड़ा। अमेजन जनजातीय क्षेत्रों में वन कटाई को जनजातीय आँखों से रिपोर्ट करने वाले जेनीमोनेट को मुकदमा झेलना पड़ा। सऊदी एजेण्टों द्वारा जमाल काशोगगी की हत्या। व्हाइट हाउस प्रेस कोर को राष्ट्रपति ट्रम्प से टक्कर लेनी पड़ी। कनाडा, कोलम्बिया, जार्जिया, सोमालिया, श्रीलंका समेत कई देशों में ये हुआ। सन 2019 में पत्रकारों की सबसे ज्यादा हत्या और कैद किए जाने की घटनाएँ सीरिया, यमन और अफगानिस्तान जैसे देशों में हुईं; जहाँ पैदा अशांति को उपजाने और बढ़ाने में जल-संकट और परिणामस्वरूप उपजे विस्थापन, कब्जा और संघर्ष की भूमिका कुछ कम नहीं।

मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी पाँच महाद्वीपों के पत्रकारों से गहन साक्षात्कार के आधार पर पेश यह कथन उचित ही है कि विकासशील देशों में पर्यावरण पर रिपोर्टिंग करना संगठित अपराध की जाँच करने के समान भी साबित हो सकता है। वर्ष 1993 के अलवर में तरुण भारतसंघ के जल संरक्षण हेतु अवैध खनन संबंधी संघर्ष तथा झाबुआ के आदिवासी हकूकों पर वृत्तचित्र फिल्माते वक्त के मेरे अनुभव भी यही हैं। यह आठवीं चुनौती है। यह चुनौती, वास्तविक रिपोर्टिंग की बजाय, इंटरनेट-व्हाट्सएप और अध्ययन संस्थानों द्वारा परोसी गई जानकारी पर निर्भरता बढ़ाकर, पर्यावरणी पत्रकारिता की विश्वसनीयता बढ़ाने के मौके घटा रहे हैं।

भाषाई बाधा : प्रोत्साहन की कमी : हालाँकि एक्सप्रेस समूह, इण्डिया रिवर फोरम, सिंगापुर पर्यावरण परिषद, तरुण भारत संघ समेत कई मंचों ने पर्यावरणी पत्रकारों के लिए पुरस्कार गठित किए हैं; विज्ञान पर्यावरण केन्द्र, लोक विज्ञान केन्द्र समेत कई अन्य फैलोशिप देते हैं; किंतु ग्लैमर की चाह में पत्रकारिता में आई पीढ़ी के लिए कम प्रचारित पर्यावरणी पत्रकरिता पुरस्कार कोई खास चुम्बक नहीं बन पा रहे। समाचारपत्रों के संस्करणों का स्थानीय हो जाना एक अलग चुनौती है। मीडिया को मुनाफे का मॉडल बनाने का मालिकाना जोर, पर्यावरणी मूल्यों के लिए प्रतिबद्ध पत्रकारिता के लिए अपने आप में समस्या है। पर्यावरण पत्र-पत्रिकाओं को यदि विज्ञापनदाता मिलते भी हैं, तो वे अपने कारपोरेट हितों के पक्ष में लेख-रिपोर्ट की अपेक्षा करते हैं। खासतौर पर आंचलिक पत्र-पत्रिकाएँ ऐसे ही संकट से जूझ रहे हैं। जानकारियों तक सीमित और मुश्किल पहुँच, पर्यावरणी अध्ययनों में अधिकांश का अँगरेजी में होना जैसी चुनौतियाँ हैं ही।

पर्यावरणी पत्रकारिता की मजबूती हेतु अपेक्षित कदम

दिक्कत यह भी है कि स्वतंत्र पत्रकारिता से रोजी-रोटी चल नहीं सकती। बिना औपचारिक डिग्री, नवागुंतकों को अब पत्रकारिता की नौकरी नहीं मिलती। नौकरी के अवसरों की दिक्कत यह है कि अगर विद्यार्थी पहले से तय कर भी ले कि उसे फलाँ विषय का विशेषज्ञ पत्रकार बनना है, तो तात्कालिक नौकरी में आवश्यक नहीं कि उसे उसी विषय पर कार्य हेतु नियुक्त किया जाए। ऐसे में यदि भारत के स्नातक पत्रकारिता पाठ्यक्रम, विषय विशेषज्ञता आधारित हो भी जाएँ .... तो स्वयं के ब्लॉग और पोर्टल तो संभव हैं; किंतु पर्यावरणी पत्रकारिता की नौकरियाँ कहाँ हैं? ऐसे में सबसे बेहतर समाधान तो जुनून ही है। जुनून सिर्फ पर्यावरणी नहीं, समूची प्रकृति के प्रतिनिधि पत्रकार के रूप में भूमिका निभाने का। इस जुनून को बल देने में मदद करने की भूमिका अध्ययन संस्थानों, न्यायविदों, वैज्ञानिकों, स्वयंसेवी संगठनों, तकनीकी विशेषज्ञों, संपादकों तथा स्वयं पर्यावरणी लेखकों-पत्रकारों की बनती है :

क) विज्ञान पर्यावरण केन्द्र तथा सैंड्रप आदि कई पर्यावरणी अध्ययन संस्थान अपने-अपने विषय से संबंधित साप्ताहिक मीडिया बुलेटिन प्रसारित करते हैं। विज्ञान पर्यावरण केन्द्र, वर्ष में समय-समय पर मीडिया संवाद आयोजित करता है। राष्ट्रीय जल विज्ञान संस्थान, टिहरी ने अपने सेमिनार में शोध पत्रों को सर्वसुलभ बनाने के लिए हिंदी वाटर पोर्टल को सौंपा है। वन, वन्यजीव, हरित न्याय, औद्योगिक प्रदूषण आदि अन्य मसलों के कई विषयक अध्ययन और वैज्ञानिक संस्थानों को भी चाहिए कि वे न सिर्फ अपने अध्ययनों को पत्रकारों की पहुँच में लाएँ, बल्कि पत्रकारों को अपने परिसरों में बुलाकर उन्हें विषय पर विस्तार से शिक्षित और संवेदनशील बनाएँ। बेहतर हो कि दो दिन से लेकर एक सप्ताह की अवधि वाले विशेष विषय आधारित सर्टिफिकेट कोर्स नियोजित और आयोजित करें। प्रकृति हितैषी अध्ययन निष्कर्षों के मीडिया प्रमाणीकरण और प्रसार के लिए फैलोशिप प्रदान करें। सम्मान / पुरस्कार नियोजित करें। इससे पत्रकारों की दृष्टि बेहतर होगी और उचित निष्कर्षों को लागू कराने में पत्रकार अपनी भूमिका निभाने को प्रोत्साहित होंगे।

ख) चूँकि पर्यावरणी चुनौतियों से सबसे अधिक दुष्प्रभावित सबसे कमजोर ही होता है। अत: पर्यावरणी मसलों पर जमीनी हकीकत तथा विषय को सबसे गरीब इंसान और जीव के हालात की दृष्टि से समझने के लिए स्वयंसेवी संगठनों को चाहिए कि वे खुद पहल करें। क्षेत्रीय भ्रमण के जरिए पत्रकारों में पर्यावरण ही नहीं, सम्पूर्ण प्रकृति के प्रति संवेदना, समझ तथा संकल्प विकसित करें। छिपे हुए एजेण्डों के पोल-खोल के अवसर भी इसी मार्ग से मिलेंगे।

ग) पर्यावरणी न्याय के भारतीय नायक श्री एम.सी. मेहता, वकीलों को प्रेरित और प्रशिक्षित करने की भूमिका निभाते हैं। उन सरीखे नैतिक और प्रतिबद्ध वकीलों को चाहिए कि पर्यावरणी न्याय संबंधी कानूनों, आदेशों, नियमों, प्रावधानों, मानकों से पत्रकारों को लगातार वाकिफ कराएँ। सूचना के अधिकार जैसे जरूरत के औजारों के सदुपयोग में साथ दें। पर्यावरणी रिपोर्टिंग करते वक्त होने वाले हमले और षड्यंत्र बड़ी चुनौती हैं। इसके लिए पर्यावरणी पत्रकारों को कानूनी संरक्षण की दरकार है। राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण ऐसा कर सकता है। वह सुनिश्चित करें। हरितन्याय पुरस्कार, इसमें एक प्रोत्साहकर्ता की भूमिका निभा सकता है।

घ) एडिटर्स गिल्ड और ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन जैसे संगठनों को आगे आना चाहिए। संपादकों को चाहिए कि वे पर्यावरणी महत्व के अवसरों के लिए खुद को प्रस्तुत करें; रिपोर्टरों और संपादकीय पन्नों से जुड़े स्वतंत्र लेखकों को ऐसे अवसरों के लिए प्रोत्साहित करें। पर्यावरणी मसलों पर आंचलिक पत्रकारिता मंचों की जमीनी समझ और पहुँच ज्यादा है। संपादकों को चाहिए कि वे आंचलिक पत्र-पत्रिकाओं को कमतर मानने की बजाय, अपनी लाइब्रेरी का हिस्सा बनाएँ। संवाददाताओं और उपसंपादकों को उन पर निगाह रखने को प्रेरित करें। आंचलिक पत्रकारिता जगत में प्रकाशित / प्रसारित राष्ट्रीय महत्व के रिपोतार्ज को राष्ट्रीय फलक देने का इंतजाम करें।

ड़) हमारे प्रेस क्लब और उनकी इमारतें निरुद्देश्य ढाँचे बनकर रह गए हैं। उन्हें चाहिए कि वे अपनी क्षमता और स्थान का उपयोग, पर्यावरण तथा ऐसे अन्य व्यापक सरोकार के विशेषज्ञता मसलों पर पत्रकारों की समझ को बेहतर और सक्षम बनाने में करें। जनसत्ता बारादारी, कुछ टेलीविजन चैनलों की तर्ज पर नीति नियंताओं को आमंत्रित कर उन पत्रकारों को सीधे साक्षात्कार के मौके मुहैया कराएँ; जिनके लिए सहज संभव नहीं होता।

च) पेशेवर प्रतिद्वन्द्वी भाव के कारण, एक ही विषय से संबंधित पत्रकारों में विषय विषयक आपसी संवाद का चलन न के बराबर है। भारत के पर्यावरणी पत्रकारों को इससे उबरना चाहिए। कारपोरेट प्रतिरोध समेत अन्य संघर्षों से निपटने के लिए सोमालिया के पर्यावरणी पत्रकारों ने नेटवर्क बनाया है। हमें भारतीय पर्यावरणी पत्रकार बिरादरी बनानी चाहिए। उपर्युक्त उल्लिखित तमाम शैक्षिक और व्यावहारिक चुनौतियों से निपटने में इसका सदुपयोग करना चाहिए। पर्यावरणी पत्रकार बिरादरी को चाहिए कि तात्कालिक महत्व के पर्यावरणी मसलों पर वह निगरानीकर्ता की भूमिका निभाए; समय-समय पर संयुक्त आकलन एवं जाँच रिपोर्ट जारी करे।

छ) विश्व आर्थिक मंच तथा विश्व बैंक जैसे जो संगठन, भारत के प्राकृतिक संसाधनों की लूट और बिगाड़ वाली परियोजनाओं को कर्ज के माध्यम बन रहे हैं; उनके जरिए भारत की आर्थिकी को भी बर्बाद कर रहे हैं; वे ही अब जीडीपी गिरने का भावी अनुमान पेश कर रहे हैं। उन्होंने ही भारत से विकासशील देश का तमगा छीनकर कम आय समूह में फेंक दिया है। सरकारों, बाजारों, कर्जदाताओं और दानदाताओं के ऐसे नापाक नियोजित गठजोड़ों को तोड़ने में सोशल मीडिया एक्सपर्ट काफी मदद कर सकते हैं। हकीकत की पड़ताल करने के साथ-साथ, उसे जन-जन तक पहुँचा भी सकते हैं।

ज) ऐसा भी नहीं है कि सभी कारपोरेट घराने, मुनाफे के लिए प्राकृतिक संसाधनों की लूट करने से परहेज नहीं कर रहे। ऐसे महाजन अभी शेष हैं ही, जो लाभ के लिए शुभ की उपेक्षा नहीं करते। उन्हें चाहिए कि व्यापार में शुचिता का प्रश्न उठाने के लिए आगे आएँ। शुचितापूर्ण कार्य करने वालों को शुचितापूर्ण संसाधन मुहैया कराएँ।

झ) निजी नैतिकता सुनिश्चित किए बगैर, प्रकृति की प्रतिनिधि पत्रकारिता नहीं की जा सकती। भूलना नहीं चाहिए कि प्रकृति प्रतिनिधि बनकर ही कोई पत्रकार, प्रकृति हितैषी आवाज बना जा सकता है। यही आदर्श पत्रकारिता है। इसी नाते पत्रकारिता, अपने मूल स्वरूप में एक मिशन है, प्रोफेशन नहीं।

(लेखक पानी और गँवई मसलों के लोकतांत्रिकपक्ष के प्रतिनिधि पत्रकार हैं।
Email : amethiarun@gmail.com)

बीबीसी हिन्दी सेवा

विवाद और साख की प्रतीक आवाज का खो जाना

■ उमेश चतुर्वेदी

31 अक्टूबर 1984 का दिन.... उत्तरप्रदेश के पूर्वी छोर पर स्थित बलिया जिला मुख्यालय स्थित रेलवे स्टेशन पर भीड़ जुटनी शुरू हो गई है। फिजाओं में कहीं से मनहूस खबर तैरने लगी है। लेकिन कोई पुष्टि करने को तैयार नहीं है। खबर है कि प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को उनके ही सिख अंगरक्षकों ने प्रधानमंत्री निवास में गोली मार दी है। चूँकि तब संचार के आज जैसे साधन नहीं थे, लिहाजा माहौल में अफवाह, संदेह और डर की मिश्रित तासीर फैल रही है। कुछ उत्साही नौजवान बलिया स्टेशन स्थित एएच ह्वीलर की पुस्तकों की दुकान पर पहुँच जाते हैं। इस दुकान में एक रेडियो सेट रखा हुआ है जहाँ अक्सर विविध भारती के गाने बजते रहते हैं। नौजवानों को लगता है कि इस रेडियो के सहारे बीबीसी की वर्ल्ड सर्विस को सुना जा सकता है। शायद उसकी सर्विस से कोई पुष्ट खबर पता चल सके। बीबीसी वर्ल्ड सर्विस को लोग इसलिए जानते हैं, क्योंकि उनमें से ज्यादातर लोगों को रोजाना सुबह-शाम बीबीसी हिंदी सेवा के कार्यक्रम सुनने की आदत है। शार्ट वेब के ट्रांसमीटर से प्रसारित होते रहे बीबीसी के कार्यक्रम को ट्यून कर पाना आसान नहीं है। लेकिन किसी तरह शायद तीन बजे की वर्ल्ड सर्विस ट्यून होती है और कटती आवाज के बीच ब्रिटिश अँगरेजी के उच्चारण के साथ पता चलता है कि फिजाँ में जो अफवाह फैली हुई है, वह बिल्कुल सही है। बीबीसी से इंदिरा गांधी की हत्या की जानकारी मिलते ही स्टेशन पर तरह-तरह की बातें होने लगती हैं। जिला मुख्यालय से पूरब और पश्चिम दोनों तरफ जाने वाली सवारी गाड़ियों के छूटने में अभी देर है। लेकिन लोग चाहते हैं कि अपने-अपने घरों पर जल्दी पहुँच जाएँ।

यह थी बीबीसी की साख। हिंदीभाषी इलाकों में समाचारों का, सही समाचारों का पर्याय बीबीसी यानी ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग सर्विस की हिंदी सेवा को अरसे से माना जाता रहा। शॉर्ट वेब पर सत्तर साल से प्रसारित होती रही यह सेवा अब बंद हो चुकी है। 31 जनवरी 2020 को इसका शॉर्ट वेब पर आखिरी बार प्रसारण हुआ। ऐसा नहीं कि यह सेवा अब सुनी नहीं जा सकेगी। बस अंतर यह होगा कि यह अब इंटरनेट के जरिए सुनी जाएगी। बस बंद होगी तो रेडियो सेट या ट्रांजिस्टर के जरिए सुना जा सकने वाला प्रसारण। आज भी एक पीढ़ी ऐसी है, जो बीबीसी हिंदी सेवा को सुनते हुए ही पली-बढ़ी है। जिसके लिए ओंकारनाथ श्रीवास्तव, अचला शर्मा, मार्क टली, सतीश जैकब, जसविंदर, परवेज आलम, शफी नकी जामी, पंकज सिंह, मधुकर उपाध्याय, कुरबान अली, राजेंद्र बोहरा, धीरंजन मालवे, रेहान फजल, सीमा चिश्ती, रेणु आगाल, विजय राणा, नरेश कौशिक जैसे नाम साख वाले समाचारों के पर्याय रहे हैं। यह बात और है कि बाद के दौर में इन नामों से कुछ श्रोताओं को तकलीफ भी हुई। खासकर जब साल 1990 में अयोध्या के राम मंदिर के लिए

आंदोलन तेज हुआ तो जिस बीबीसी से प्रसारित एक-एक हर्फ को लोग पवित्र और सही समाचारों का पर्याय मानते रहे, उसके प्रति थोड़ा खिंचाव भी पैदा हुआ। विशेषकर 6 दिसंबर 1992 को अयोध्या का बाबरी ढाँचा जब कार सेवकों ने ढहा दिया तो राम मंदिर के आंदोलनकारियों को बीबीसी ने हिंदू उग्रपंथी कहना शुरू कर दिया था। इससे उसी हिंदी समुदाय और इलाके में बीबीसी को लेकर रोष भी बढ़ा, जिस हिंदी समुदाय के चलते इस सेवा की वैश्विक पहचान थी।

11 मई 1940 को लंदन से लगातार प्रसारित होती रही बीबीसी की हिंदी सेवा के एक दौर में भारत में पाँच करोड़ तक नियमित श्रोता थे। आपातकाल के दिनों में तो बीबीसी हिंदी सेवा ने हिंदीभाषी इलाकों में घर-घर तक पहुँच बना ली। इसकी बड़ी वजह यह रही कि विदेशी प्रसारण संस्था होने के चलते इसने आपातकाल के दौरान लगाए सेंसर नियमों की परवाह नहीं की। जिन समाचारों और सूचनाओं से भारतीय समाचार माध्यम महरूम थे या फिर सेंसर के चलते प्रकाशित-प्रसारित नहीं कर पाते थे, बीबीसी उन्हें प्रसारित करने में सफल रहा। चूँकि उसका प्रसारण भारत से बाहर यानी लंदन से होता था, लिहाजा सेंसर की कैंची वहाँ तक पहुँच नहीं पाती थी। बीबीसी के ही ऑडियंस रिसर्च के मुताबिक उन दिनों बीबीसी हिंदी सेवा की श्रोता संख्या पाँच करोड़ तक पहुँच गई थी।

बीबीसी की साख बनने की एक यही वजह नहीं रही। समाचारों की दुनिया के लिए भारतीय इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों को खोलने के पहले तक भारत में त्वरित सूचना और संचार का एकमात्र माध्यम सरकार संचालित और नियंत्रित दूरदर्शन और आकाशवाणी ही थे। सरकारी नियंत्रण में होने के चलते उनकी अपनी सीमा भी रही है। बीबीसी हिंदी सेवा ने भारतीय सरकारी तंत्र की पुष्टि और प्रसारण के पहले ही इंदिरा गांधी की हत्या और बाबरी ध्वंस की खबरें प्रसारित कर दी थीं। लेकिन सरकार नियंत्रित समाचार माध्यमों की मजबूरी रही है कि ऐसे संवेदनशील समाचारों को वह बिना सक्षम अधिकारी तंत्र की मंजूरी के बिना प्रसारित नहीं कर सकते थे। पत्रकारिता के अध्ययन और शोध के प्रमुख केंद्र भारतीय जनसंचार संस्थान के निदेशक रहे डा. जसवंत सिंह यादव कहा करते थे कि चूँकि इंदिरा गांधी की हत्या या आपातकाल जैसे महत्वपूर्ण मौकों पर विदेशी और स्वायत्त संगठन होने के चलते समाचारों के प्रसारण में बीबीसी आगे रहा, इसीलिए उसकी भारतीय संदर्भ में निष्पक्ष समाचार माध्यम के रूप में साख बनी। 31 अक्टूबर 1984 को इंदिरा गांधी की हत्या की खबर सबसे पहले दुनिया को बीबीसी के ही जरिए मिली थी। लेकिन जसवंत सिंह यादव का कहना है कि महत्वपूर्ण मौकों के अलावा कम ही अवसरों पर बीबीसी ने भारतीय सार्वजनिक प्रसारण माध्यमों की तुलना में कोई बड़ा झंडा नहीं गाड़ा। इसके बावजूद एक दौर में समाचारों के सही होने के लिए बीबीसी का झूठा-सच्चा हवाला देने का चलन रहा। समाचारों के केंद्र में रहने वाले नेता हों या उद्योगपति या कोई अन्य हस्ती, खबरिया चैनलों के उभार के दौर से पहले बीबीसी को सबसे महत्वपूर्ण मानता रहा। हिंदी में सिविल सेवा और दूसरी नौकरियों की तैयारी करने वाले लोगों की भी पसंद बीबीसी के हिंदी प्रसारण रहे।

जब पिछली सदी के नब्बे के दशक में फ्रीक्वेंसी मॉड्यूल यानी एफएम बैंड पर रेडियो प्रसारण का चलन बढ़ा, उसकी तकनीक में सुधार हुआ, बीबीसी हिंदी सेवा की लोकप्रियता में कमी आने लगी। चूँकि अब भी एफएम में समाचारों के गैर सरकारी प्रसारण की अनुमति नहीं मिली है, विदेशी संस्थानों तक को भी प्रसारण की अनुमति नहीं है, लिहाजा इंटरनेट में भी बीबीसी ने पाँव बढ़ाने शुरू किए। बीबीसी हिंदी सेवा का वेब पोर्टल भी चल पड़ा। यही वह दौर है, जब भारत में

भारतीय जनता पार्टी का उभार बढ़ा। भारतीय जनता पार्टी और उसके शीर्ष नेता नरेंद्र मोदी पर गुजरात दंगों के आरोप लगे। इसके लिए जिस तरह पश्चिमी मीडिया का बड़ा हिस्सा नरेंद्र मोदी को जिम्मेदार मानता रहा, बीबीसी भी इस सोच से अलग नहीं रहा। चूँकि इसी दौर में निष्पक्ष समाचार के लिए भारतीय जनता पार्टी और नरेंद्र मोदी विरोध का एक नया निकष भी तैयार हुआ, लिहाजा पश्चिमी मीडिया ने इसका अनुसरण करना शुरू किया और बीबीसी भी इसका अपवाद नहीं रहा। सन 2014 में केंद्र में नरेंद्र मोदी की अगुआई वाली सरकार बनने के बाद भारतीय समाज में कथित रूप से मॉब लिंचिंग, असहिष्णुता, हिंदुत्व के उभार आदि के लिए नरेंद्र मोदी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनता पार्टी को भारतीय बौद्धिकों के एक खेमे के साथ ही पश्चिमी मीडिया ने जिम्मेदार ठहराया। इसमें बीबीसी भी शामिल रहा और इसके लिए हिंदीभाषी वर्ग के एक बड़े हिस्से के आलोचना के केंद्र में भी वह रहा।

एफएम के बढ़ते दौर में जब शॉर्ट और मीडियम वेब पर प्रसारित बीबीसी की श्रोता संख्या में गिरावट आनी शुरू हुई तो बीबीसी की हिंदी सेवा को कुछ साल पहले पूरी तरह से भारत में शिफ्ट कर दिया गया। बीबीसी ने टेलीविजन समाचार कार्यक्रम भी बनाना शुरू किया और वह कार्यक्रम पहले ईटीवी के क्षेत्रीय हिंदीभाषी चैनलों पर प्रसारित किया गया। बाद के दिनों में ईटीवी समूह के हिंदीभाषी टीवी चैनल जब टीवी 18 समूह का हिस्सा बने तो बीबीसी के कार्यक्रम वहाँ से हटा दिए गए। फिर बीबीसी ने अपने वेब पोर्टल पर टेलीविजन कार्यक्रमों का प्रसारण जारी रखा। इसके बाद उसने अपना पूरा फोकस डिजिटल की दुनिया में कर दिया। आज भारत से बीबीसी की हिंदी ही नहीं, नेपाली, गुजराती, मराठी और तमिल सेवा भी डिजिटल मंच पर मौजूद है और अपनी

हमारे समाज ने अपने लोकवृत्त के ज्यादातर आधुनिक मूल्य पश्चिम से ही ग्रहण किए हैं, लिहाजा बीबीसी द्वारा प्रकारांतर से प्रक्षेपित मूल्यों पर उसका भरोसा ज्यादा रहा। आज जिस सांस्कृतिक आधार वाली भारतीयता की अवधारणा की बहस भारतीय राजनीति और समाज में चल रही है, उसे बीबीसी ने अनदेखा ही किया है। इसके बावजूद माना जा सकता है कि बीबीसी ने भारत की कम से कम तीन पीढ़ियों को समाचारों के प्रति आग्रही और सचेत बनाने में बड़ी भूमिका निभाई है।

उपस्थिति दर्ज करा रही है।

यह सच है कि बीबीसी की स्थापना दूसरे विश्व युद्ध के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप स्थित ब्रिटिश प्रशासित ब्रिटिश सैनिकों तक ब्रिटिश समाचार पहुँचाना था। चूँकि 11 मई 1940 को विंस्टन चर्चिल ब्रिटेन के प्रधानमंत्री बने थे, लिहाजा इसी बीबीसी ने हिन्दुस्तानी सर्विस के नाम से प्रसारण शुरू किया। लेकिन 1947 में भारत की आजादी और विभाजन के बाद हिन्दुस्तानी सर्विस का भी विभाजन हो गया और 1949 में जनवरी महीने में इंडियन सेक्शन की शुरुआत हुई।

बीबीसी की रेडियो वाली आवाज ट्रांजिस्टर पर सुनाई देना अब बंद हुई है। लेकिन दुनिया की सर्वोच्च महाशक्ति अमेरिका के सार्वजनिक प्रसारण वॉयस आफ अमेरिका की हिंदी सर्विस का प्रसारण अक्टूबर 2008 को ही बंद हो गया। अमेरिकी सरकार की नीतियों को शॉर्ट वेब के जरिए करीब 54 साल तक पहुँचाते रहे इस प्रसारण के बंद होने के बाद भारतीय समुदाय का एक बड़ा वर्ग बेहद निराश हुआ था। माना जा रहा था कि तब भी वॉयस आफ इंडिया के हिंदी के भी करीब दो करोड़ श्रोता भारत समेत दुनिया में थे। गौरतलब है

कि भारतीय श्रोताओं को ध्यान में रखते हुए एक जुलाई 1954 को अमेरिकी सरकारी प्रसारण तंत्र वॉयस आफ अमेरिका ने हिंदी प्रसारण की शुरुआत की। तब अमेरिकी राष्ट्रपति डी. आइजनहावर और भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के बीच नजदीकियाँ बढ़ रही थीं। तब दुनिया धीरे-धीरे शीत युद्ध की ओर बढ़ने लगी थी। उस वक्त अमेरिकी सरकार ने भारत के विशाल हिंदीभाषी समुदाय को प्रभावित करने के लिए हिंदी में प्रसारण शुरू किया था। चूँकि वॉयस आफ अमेरिका बीबीसी की तरह स्वायत्त और ब्रिटिश संसद के नियंत्रण की बजाय सीधे अमेरिकी सरकार के अधीन था। लिहाजा इस पर बीबीसी की तुलना में अमेरिकी सरकार की नीतियों को प्रचारित किया जाता था और उनको ही ध्यान में रखकर कार्यक्रम बनाए जाते थे। इस प्रसारण के जरिए भारत स्थित विशाल नागरिक समूह को अमेरिकी सरकार अपनी नीतियों से प्रभावित करने की कोशिश करती थी।

कुछ ऐसी ही स्थिति पहले पश्चिमी और बाद में एकीकृत जर्मनी से प्रसारित होने वाले रेडियो डायचे वेले की भी रही। सन 1955 में पश्चिमी जर्मनी के सार्वजनिक प्रसारक डायचे वेले ने हिंदी सेवा की शुरुआत की। इसका मकसद जर्मन नीतियों के बारे में भारतीय समाज को जागरूक करना रहा। एक दौर में बीबीसी और वॉयस आफ अमेरिका के बाद भारत में यही सेवा सबसे ज्यादा लोकप्रिय रही। लेकिन जैसे-जैसे तकनीक का विस्तार होता गया, वैसे - वैसे डायचे वेले को भी आभास होने लगा कि रेडियो के शॉर्ट वेब पर प्रसारण की बजाय इंटरनेट पर प्रसारण कहीं ज्यादा सुगम है। वैसे भी शॉर्ट या मीडियम वेब के प्रसारण की लोकप्रियता लगातार घटती रही। लिहाजा साल 2011 में इस सर्विस ने भी अपना प्रसारण शॉर्ट वेब पर बंद कर दिया। लेकिन अब भी इंटरनेट पर इस रेडियो सेवा की मौजूदगी बरकरार है। भारतीय संदर्भ में देखें तो अब सिर्फ जापान रेडियो, चीन के चाइना रेडियो इंटरनेशनल और ईरान रेडियो भारत केंद्रित हिंदी या दूसरी भाषाओं में इंटरनेट के साथ ही शॉर्ट वेब पर प्रसारण कर रहे हैं। जाहिर है, इनका भी मकसद अपने यहाँ के समाचारों, अपनी सरकारों की नीतियों आदि की जानकारी भारतीय श्रोताओं को देना है।

एक बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि चूँकि बीबीसी उस देश की प्रसारक संस्था है, जिसके हम करीब दो सौ साल तक गुलाम रहे, उसकी वजह से हमारे यहाँ उसकी ज्यादा पूछ-परख तो रही ही, उसने अपने पाँव भी ज्यादा फैलाए। इसीलिए उसके प्रसारणों पर देश की निगाह भी ज्यादा रही और अगर कभी विवाद हुआ तो उस पर ही हुआ। लेकिन उसने भारतीय समाज पर प्रभाव भी बहुत डाला। भारतीय समाज में सही समाचारों की पर्याय तो बीबीसी रहा ही, भारतीय राजनीति पर भी उसने बहुत प्रभाव डाला। एक दौर में भारतीय राजनेता अपनी जनता तक सीधा संदेश पहुँचाने के लिए बीबीसी का ही इस्तेमाल करते थे। लालू यादव के बारे में तो बीबीसी के ही लोग बताते हैं कि उन्हें अपनी जो बात कहनी होती थी, वे कह देते थे, चाहे उनसे जो भी सवाल पूछे जाएँ। बीबीसी ने सिर्फ राजनीति ही नहीं, कारोबार, सिनेमा और समाज की सटीक खबरें दीं। हालाँकि उनमें उसकी अपनी नीतियों का भी असर साफ नजर आता था।

भारत में जब प्रसार भारती का विचार आया तो उसे बीबीसी की तर्ज पर ही स्वायत्त बनाने की माँग हुई। बीबीसी की तरह प्रसार भारती को भी संसद के नियंत्रण में रखने का कानून पारित किया गया। बीबीसी भले ही ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी हो, लेकिन कई मौकों पर वह भी ब्रिटिश सरकार का दबाव झेल नहीं पाया। सन 2003 में जब इराक पर अमेरिकी और ब्रिटिश सरकार ने हमला किया तो हमले का आधार इराक

के तत्कालीन शासक सद्दाम हुसैन के पास व्यापक जनसंहार वाले रासायनिक हथियार होने को बनाया गया था। तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश जूनियर और ब्रिटिश प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर ने इसी आधार पर मित्र देशों को इराक पर हमले के लिए तैयार किया। लेकिन जब विरोध हुआ तो संयुक्त राष्ट्र संघ की अगुआई में दुनियाभर के वैज्ञानिकों की एक टीम व्यापक जनसंहार के हथियारों की पड़ताल के लिए इराक भेजी गई। इस टीम में ब्रिटेन के एक वैज्ञानिक विलियम केली भी थे। लेकिन इस टीम ने पाया कि इराक के पास ऐसे कोई हथियार ही नहीं थे। इसकी जानकारी बीबीसी को लगी तो उसने प्रसारित कर दी। इससे प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर सवालों के घेरे में आ गए। इसके बाद इस रिपोर्ट को वापस लेने के लिए उन्होंने दबाव बनाया और बीबीसी के महानिदेशक और उस समाचार को लिखने वाले रिपोर्टर समेत बीबीसी के तेरह अधिकारियों-पत्रकारों को इस्तीफा देना पड़ा। इस समाचार के स्रोत के तौर पर ब्रिटिश सरकार ने वैज्ञानिक विलियम केली पर शक जाहिर किया और एक दिन सुबह की सैर के दौरान संदेहास्पद हालत में उनका निधन हो गया। इसके साथ ही इस मामले का पटाक्षेप हो गया। बीबीसी ने इसे तूल नहीं दिया, जिस तरह वह भारतीय मामलों में तूल देता रहा है।

बीबीसी भारतीय राजनीति में उदात्त परंपराओं का वाहक बनता रहा, लोकतांत्रिक परंपरा का समर्थक भी रहा। लेकिन उसका झुकाव एक खास धारा की तरफ हमेशा रहा। एक बात और, उसने कभी ब्रिटिश नीतियों का विरोध नहीं किया और प्रकारांतर से वह भारतीय समाचारों में भी उसे समाहित करने की कोशिश करता रहा। वह ब्रिटिश प्रजा की तरह ब्रिटिश राजपरिवार के प्रति भी उत्तरदायी और प्रतिबद्ध बना रहा। चूँकि हमारे समाज ने अपने लोकवृत्त के ज्यादातर आधुनिक मूल्य पश्चिम से ही ग्रहण किए हैं, लिहाजा बीबीसी द्वारा प्रकारांतर से प्रक्षेपित मूल्यों पर उसका भरोसा ज्यादा रहा। आज जिस सांस्कृतिक आधार वाली भारतीयता की अवधारणा की बहस भारतीय राजनीति और समाज में चल रही है, उसे बीबीसी ने अनदेखा ही किया है। इसके बावजूद माना जा सकता है कि बीबीसी ने भारत की कम से कम तीन पीढ़ियों को समाचारों के प्रति आग्रही और सचेत बनाने में बड़ी भूमिका निभाई है।

लेखक, प्रसार भारती के कंसल्टेंट हैं।
(Email : uchaturvedi@gmail.com)

सप्रे संग्रहालय की वेबसाइट

माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल की वेबसाइट में सप्रे संग्रहालय में संग्रहीत प्रचुर संदर्भ सामग्री की सूची, संग्रहालय के प्रकाशनों का संक्षिप्त परिचय, संग्रहालय आने वाले विद्वानों की सम्मतियाँ आदि विवरण सम्मिलित किए गए हैं। इस विपुल संदर्भ सामग्री का लाभ उठाने के इच्छुक शोधकर्त्ता, पत्रकार, लेखक एवं विद्यार्थी वांछित सामग्री की जानकारी सप्रे संग्रहालय की वेबसाइट से प्राप्त कर सकते हैं।

Website : www.sapresangrahalaya.com
Email : sapresangrahalaya@yahoo.com

पाँच सालों का सफर
गांधी ही विकल्प हैं!

श्री हरिवंश, राज्यसभा के उपसभापति और प्रभात खबर के पूर्व प्रधान संपादक से पत्रकार विकास कुमार की बातचीत

सवाल : *चार दशक तक सक्रिय पत्रकारिता करते हुए, राजनीति का आकलन आपने किया। अब खुद राजनीति में हैं, बाहर से राजनीति को देखना, आँकना, फिर उसका हिस्सा बनना, क्या फर्क है ? पत्रकारिता से राजनीति में क्यों आए ?*

जवाब : लौटकर पीछे देखता हूँ, तो पाता हूँ कि आजादी के बाद से लगभग सत्तर के दशक तक देश में जो पत्रकारिता थी, उसके कुछ मूल्य थे, कुछ प्रतिबद्धताएँ थीं। वे प्रतिबद्धताएँ, आजादी की लड़ाई में संघर्ष से उपजे मूल्य थे। गांधी के नैतिक आग्रह, आत्मसंयम एवं मर्यादा की छाप, पूरे समाज पर थी। राजनीति में थी। जीवन के अन्य हिस्सों में थी। पत्रकारिता में भी। इसलिए सत्तर के दशक तक वैसे संपादक रहे, जो आजादी की लड़ाई के हिस्सेदार, साक्षी, गवाह थे। सी.वाई. चिंतामणि, के. रामाराव, बाबूराव विष्णु पराडकर, अमृतलाल चक्रवर्ती, बालमुकुंद जी, नेशनल हेरल्ड के चलपति राव, श्यामलाल जैसे लोग। 'लीडर' जैसा अखबार सिर्फ 'लीडर' ही नहीं, इस धारा में देश के अलग-अलग हिस्सों में जो भाषायी अखबार निकलते थे, उनमें भी इसी तरह के संपादक और पत्रकार थे, जो मानते थे कि समाज के अंदर आदर्श, ईमानदारी, प्रतिबद्धता और गांधीवादी मूल्य सर्वोपरि हैं और पत्रकारिता के लिए भी यही कसौटी हैं। पत्रकारिता के लिए भी गांधी का कहा 'साध्य एवं साधन' का सूत्र प्रासंगिक, प्रेरक एवं पाथेय है। आप जानते हैं, चिंतामणि जी (लीडर के संपादक) पहले 35 रुपये प्रतिमाह पर एक अनाम रिपोर्टर थे। फिर दैनिक पत्र (लीडर) के संपादक बने। फिर प्रांत के मंत्री और एक पार्टी के लीडर भी हुए। आजादी की लड़ाई के दौरान। यह उनकी साख थी।

गांधी का मूल मंत्र क्या था ? एक पंक्ति में कहें तो साधन और साध्य में रिश्ता। जो आपके आदर्श हैं, आकांक्षा हैं, कल्पना हैं, सपने हैं, उनको पूरा करने के लिए आप कौन-सा रास्ता अपनाते हैं, वह रास्ता कैसा है, यह मूल सवाल है। गांधी ने माना कि यदि जीवन में बेहतर काम करना है, तो वह रास्ता सच का, अहिंसा का, ईमानदारी का, नैतिक मूल्यों का ही हो सकता है। इस गांधीवादी विचारधारा से प्रेरित जो आजादी की लड़ाई की धारा थी, उसमें क्रांतिकारी लोग भी थे। उनकी धारा हिंसा में विश्वास करती थी, लेकिन जीवन में रहन-सहन में वे भी गांधीवादी ही थे। इस विचारधारा का असर पत्रकारिता पर रहा। उस दौर के कई शीर्ष राजनेता भी पत्रकार थे।

मैंने जब पत्रकारिता शुरू की, तो उस दौर में आजादी के बाद की दूसरी पीढ़ी अलग-अलग क्षेत्रों में नेतृत्व सँभालने लगी थी। पर, वह पीढ़ी पहली पीढ़ी से प्रशिक्षित थी। कुछ पहली पीढ़ी के

भी थे। जैसे हमारे पहले संपादक धर्मवीर भारती। उन दिनों गैर कांग्रेसवाद की हवा थी। इस पर समाजवादी, कम्युनिस्टों, जनसंघ के लोगों का अलग-अलग चिंतन चला। उसी समय दीनदयाल उपाध्याय ने अर्थनीति के लिए एकात्म मानववाद की चर्चा शुरू की। समाजवादियों ने सबसे अधिक प्रखर ढंग से अपनी विचारधारा सामने रखी। डाक्टर लोहिया, आचार्य नरेन्द्रदेव, मधु लिमये, चन्द्रशेखर, जार्ज, राजनारायण वगैरह। ये सब समाजवादी धारा से निकले लोग थे। पर जब राजनीति में समाजवादी धारा एक थी, तो उसका नयी पीढ़ी पर असर था। उसी तरह साम्यवादी धारा का भी। साम्यवादी धारा में एक धारा थी, जिसने कहा कि परिवर्तन सत्ता के रास्ते नहीं, बंदूक के रास्ते संभव है। वह धारा नक्सलवाद की थी। हमारे समय में उसका जोर था। आप पाएँगे कि समाजवादी पार्टी बँट चुकी है। प्रजा सोशलिस्ट, सोशलिस्ट वगैरह में। कम्युनिस्ट भी बँट गए। सीपीआइ और सीपीएम। भारतीय जनसंघ में दीनदयाल जी के एकात्म मानववाद की चर्चा शुरू हुई, पर इन सबके बीच नक्सलवाद की धारा ने भी प्रतिभावान युवकों को अपनी ओर आकर्षित किया। समाज-देश के इसी माहौल या पृष्ठभूमि में हमारी पीढ़ी किशोर से युवा हो रही थी। हमारे मानस पर इन विचारधाराओं का प्रभाव था, क्योंकि तब विचारों का आकर्षण था। विचारों और वादों ने ही मानव इतिहास को अलग-अलग मोड़ पर बदला और प्रभावित किया है। हालाँकि उनकी जगह अब टेक्नोलॉजी ने ले ली है। पर, जब हमारी पीढ़ी पढ़ रही थी, तब जेपी आंदोलन शुरू हुआ। आप पाएँगे कि आंदोलन में ऐसे ही विचारधारा के युवा ज्यादा जुड़े और इन्हीं विचारधाराओं से प्रभावित युवा तब पत्रकारिता में भी आ रहे थे। आजादी के दौरान जो पत्रकारिता में आ रहे थे, वे आजादी की लड़ाई के मूल्यों से प्रेरित और प्रभावित होकर आए। जब हम लोग आए, तब ऐसे लोगों को हमने अपने बीच देखा। वह समय भी अलग लगा। लोक-लाज, मान-सम्मान-मर्यादा का समय। मुझे याद है कि गणेश मंत्री वरिष्ठ पत्रकार थे। शुरू-शुरू में जब टाइम्स आफ इंडिया (मुंबई) में प्रशिक्षु पत्रकार बनकर गया तो उनके साथ धर्मयुग में काम करने का मौका मिला। उन दिनों धीरे-धीरे शराब पीना पत्रकारों के लिए जरूरी तो नहीं था, लेकिन पत्रकारिता के गलियारे में शराब प्रवेश कर चुकी थी। एक बार हम लोग कहीं गए। किसी मित्र के कार्यक्रम में। तब किसी ने बीयर दिया। मंत्रीजी कुछ पीते नहीं थे,मैं भी नहीं पीता था, पर हमारे एकाध कलीग थे, पीने वाले। वे पीने लगे। मंत्री जी ने कहा कि हम लोगों को अब चलना चाहिए। मर्यादा तो होनी चाहिए। हमारी पीढ़ी के लोग बीयर पी रहे थे, तो वहाँ मंत्रीजी जैसे लोग खड़े नहीं हो पाते थे। असहजता लगती थी। बड़े-छोटे के बीच व्यवहार में संयम-मर्यादा। यह नैतिक दौर था। स्व-अनुशासन का दौर। इस पृष्ठभूमि में मैं पत्रकारिता में आया।

मेरे आरंभिक पत्रकारी जीवन में ही गणेश मंत्री, धर्मवीर भारती, नारायण दत्तजी, विश्वनाथ सचदेव जैसे अनेक लोगों का असर रहा। इनसे निजी जीवन और मेरी पत्रकारिता पर प्रभाव पड़ा। इमरजेंसी का समय लैंडमार्क बना। फिर उदारीकरण का समय आया। नये दौर की शुरुआत हुई। इस नये दौर में एक मंत्र चला, प्राफिट मैक्सिमाइजेशन, यही मूल मंत्र बन गया। सन 91 के बाद भारतीय समाज इस रास्ते चल पड़ा। चीजें तेजी से बदलीं। पर संयोग से इस दौर में एक ऐसे अखबार में काम करने का मौका मिला जहाँ मुझे अपने ढंग से काम करने की एक सीमा तक छूट थी। सन 1991 में भारत सुराजी लीक (लाइसेंस कोटा-परमिट राज) से हटकर उदारीकरण के रास्ते चल पड़ा तो उसका असर पत्रकारिता पर भी गहराई से पड़ा। 'न्यूज यू कैन यूज' का स्लोगन आया। सन 50 से लेकर 91 तक की पत्रकारिता में समाज की पीड़ा, वंचितों की आह, नैतिक सवाल या जो किसी धर्म-जीवन पद्धति के स्वस्थ सनातन मूल्य हैं, उनको बचाए रखना पत्रकारिता थी। अपवाद भी हैं, आपातकाल जैसी भूमिका पर मोटे

तौर पर पत्रकारिता का स्वर एक नया समाज, वर्गविहीन-जातिविहीन बने, संकीर्णता से मनुष्य ऊपर उठे, औरतों, पीछे छूटे लोगों, बच्चों को विशेष अवसर मिले, ये प्रेरक तत्व थे। लेकिन 1991 के बाद आदर्श या सूक्त वाक्य बना, अधिकतम लाभ कमाना यानी प्राफिट ही सब कुछ है। तब आया 'न्यूज यू कैन यूज'। उसी समय किसी फिल्म का एक गाना आया - 'दिल माँगे मोर'। न्यूजपेपर उद्योग में यह काफी प्रचारित हुआ। यानी, जो सेंसेज (इंद्रियों) को सैटिस्फाइ (संतुष्ट) करे, वही प्रमुख है। भारत का आदर्श क्या था, गीता का क्या संदेश था, भौतिक भूख, इंद्रिय भूख की आग मत जलाओ, एक और नया तथ्य जुड़ा। यह इंद्रिय निग्रह या लोभ को संयमित करने की बात महज पूरब की सभ्यता में ही नहीं थी। सन 1945 में विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका में न्यू डील आर्थिक नीति आई। उसमें 'मास प्रोडक्शन' (बड़े पैमाने पर उत्पादन) की अवधारणा थी। प्रोफेसर जे.के. गैलब्रेथ, जाने-माने अर्थशास्त्री तब अमेरिका में आर्थिक विभागों के मंत्री थे। उन्होंने तब इस प्रस्ताव पर राय दी कि इस रास्ते मत जाएँ। बड़े पैमाने पर उत्पादन को बढ़ावा देने की अर्थनीति का रास्ता सही नहीं। विज्ञापन की शुरुआत होगी, लोगों की इंद्रियों (सेंसेज) को अपील कर वस्तुओं की बिक्री की प्रतिस्पर्धा होगी। उपभोक्ता समाज खड़ा होगा। ये चेतावनी किसी और ने नहीं, दुनिया के मशहूर अर्थशास्त्री प्रोफेसर जे.के. गैलब्रेथ ने दी थी। बाद में वह भारत में अमेरिका के राजदूत बने। अब पाया गया है कि यूरोप, अमेरिका में लोग जितनी चीजें उपभोग के लिए खरीदते हैं, उसमें से एक-तिहाई चीजें जीते जी उपभोग भी नहीं कर पाते। इसी रास्ते की देन है माल्स, बिगशाप्स की संस्कृति। हमारे यहाँ आजादी के बाद ही विनोबा जी ने कहा कि हम इंद्रियजीवी पीढ़ी गढ़ रहे हैं। इंद्रियों का सुख ही सब कुछ, इस रास्ते बढ़ रहे हैं।

हमारे ऋषियों ने तो बहुत पहले इन चीजों पर सावधान किया है। पर बाद के दौर में विज्ञापन ही सब कुछ बन गया। अखबारों में मार्केटिंग हेड विज्ञापन हेड, अहम हो गए। संपादक एवं संपादकीय टीम गौण। यह परिवर्तन का दौर रहा। संयोग से जहाँ हमने काम किया, वहाँ हमने साथियों के साथ मिलकर ऐसा अवसर बनाया कि संपादक की गरिमा, पुरानी चीजें, पुराने मूल्य रहे। अर्थशास्त्र का विद्यार्थी रहा और पत्रकारिता में आया, तो आर्थिक सवालों को समझने की कोशिश करता था। मैं आज भी मानता हूँ कि आर्थिक सवाल राजनीति और समाज को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। मार्क्स का मत था कि इतिहास को मोड़ने वाले क्षणों में आर्थिक सवालों की निर्णायक भूमिका रही। मैं जिस अखबार से जुड़ा था, उसका मालिक नहीं था। हमारी सीमा थी। आजादी या स्वतंत्रता हमेशा सीमा में होती है। अराजक नहीं। इस एहसास के साथ हमने काम किया। पर, 27 वर्षों तक रहने के बाद लगने लगा था कि अब नेतृत्व नयी जमात को सौंपना चाहिए। और उम्र तो जीवन की एक कठिन सच्चाई है।

हमारे यहाँ आजादी के बाद ही विनोबा जी ने कहा कि हम इंद्रियजीवी पीढ़ी गढ़ रहे हैं। इंद्रियों का सुख ही सब कुछ, इस रास्ते बढ़ रहे हैं। हमारे ऋषियों ने तो बहुत पहले इन चीजों पर सावधान किया है। पर बाद के दौर में विज्ञापन ही सब कुछ बन गया। अखबारों में मार्केटिंग हेड विज्ञापन हेड, अहम हो गए। संपादक एवं संपादकीय टीम गौण। यह परिवर्तन का दौर रहा। संयोग से जहाँ हमने काम किया, वहाँ हमने साथियों के साथ मिलकर ऐसा अवसर बनाया कि संपादक की गरिमा, पुरानी चीजें, पुराने मूल्य रहे। अर्थशास्त्र का विद्यार्थी रहा और पत्रकारिता में आया, तो आर्थिक सवालों को समझने की कोशिश करता था।

चार दशक तक इस पेशे में रहा। उसी मन:स्थिति या दौर में राजनीति में जाने का अचानक मौका मिला। लगा कि यह देखने का अवसर मिला है कि बदलाव के सबसे सशक्त माध्यम राजनीति की दुनिया कैसी है ? पत्रकारिता में राजनीति पर प्राय: लिखता था कि राजनीति ही समाज को दिशा देती है। समाज को बदलती है। एक बार बीच में अलग मौका मिला था, तो प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर जी के साथ पीएमओ में काम किया। ब्यूरोक्रेसी एवं सिस्टम को समझने की अंदर से उत्सुकता थी। राज्यसभा का इतिहास पढ़ा था। अलग-अलग पेशे से राजनीति में और विशेषकर इस उच्च सदन में लोग आए, जिनके बारे में हमेशा मन पर एक प्रभाव रहा।

लोगों को अब शायद याद नहीं कि इस उच्च सदन में कैसे-कैसे लोग आए ? के.एस. हेगड़े जनता पार्टी की सरकार के समय लोकसभा के अध्यक्ष बने थे। पर, हेगड़े साहब पहले राज्यसभा में थे। सन 1957 में ही राज्यसभा के सदस्य बने थे। फिर वे मैसूर हाईकोर्ट के जज बने, बाद में उन्होंने इस्तीफा दिया, न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र, भारत के मुख्य न्यायाधीश, वे भी राज्यसभा के सदस्य रहे। एक धारा और रही। भगवतीचरण वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, श्रीकान्त वर्मा, अमृता प्रीतम, ताराशंकर बंदोपाध्याय, डी. चट्टोपाध्याय, हरिवंश राय बच्चन, बनारसी दास चतुर्वेदी, आर.आर. दिवाकर, राजमोहन गांधी, हुमायूँ कबीर, उमाशंकर जोशी, डा. ताराचंद, काका साहब कालेलकर, धर्मशास्त्र के जानकार डा. काणे, वैज्ञानिक कस्तूरीरंगन, विद्यानिवास मिश्र, डा. अशोक मित्र, लीलावती मुंशी, आर.के. नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव, डा. राजा रमन्ना, सालिम अली, पट्टाभि सीतारमय्या, पंडित अलगू राय, अरुण शौरी, खुशवंत सिंह, कुलदीप नैयर... ऐसे अनेक नाम। कुछ नामिनेटेड, कुछ चयनित होकर आए। इसी के लिए राज्यसभा बनी थी कि ऐसे लोग आएँ। यह जरूर है कि बाद में वह धारा कमजोर पड़ी। जब अवसर मिला तो मन किया कि देखूँ। यह जरूर है कि ऐसे नामों के आगे मैं कुछ नहीं, इनकी पंक्ति में खड़ा होने की योग्यता भी मेरे पास नहीं, लेकिन इन्हें समझने की उत्सुकता हमेशा रही। मैं राजनीति में इन्हीं लोगों से प्रभावित होकर आया।

सवाल : *चार दशकों तक आपने पत्रकारिता के सरोकार, प्रभाव और ताकत को देखा। अब राजनीति की ताकत देख रहे हैं। सरोकार बनाए रखने और बदलाव लाने में कौन महत्वपूर्ण है ? पत्रकारिता और राजनीति में कैसा संबंध होना चाहिए ?*

जवाब : यह सवाल कि पत्रकारिता-राजनीति या पत्रकारिता-न्यायपालिका के बीच क्या रिश्ता होना चाहिए, ऐसा ही है जैसे यह कि समाज के अन्य वर्गों के बीच क्या रिश्ता हो ? सब आपस में गहरी ताल्लुक रखने वाली संस्थाएँ हैं। हमारे संविधान में न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका में तो संतुलन की व्यवस्था है ही लेकिन इन तीन स्तंभों के अतिरिक्त अपने महत्व के कारण पत्रकारिता चौथा स्तंभ बनी। हर का महत्व है। जब मैंने पत्रकारिता की, तो मेरी पत्रकारिता का मूल विषय या स्वर समाज के बदलाव का ही रहा। जेपी आन्दोलन ने ही विद्यार्थी जीवन में पत्रकारिता में जाने के लिए प्रेरित किया। इस कारण हमेशा मानता रहा कि समाज को बड़े स्तर पर राजनीति बदलती है। इस विषय पर अनेक लेख भी लिखे। याद है कि 'धर्मयुग' पत्रिका में मेरा एक लेख आमुख कथा (कवर स्टोरी) के रूप में छपा कि क्रांतियाँ हुईं, फिर क्या हुआ ? यह 77 में बदलाव की पृष्ठभूमि के संदर्भ में था। व्यापक रूप से फ्रांस, रूस, चीन की क्रांतियों का अध्ययन कर उसमें पाया था कि लेखन-साहित्य-कविता-पत्रकारिता की समाज बदलने में क्या भूमिका रही ? फिर खुद अपने देश की आजादी की लड़ाई में पत्रकारिता की भूमिका से भी अवगत था। इस लेख की खूब चर्चा हुई। गांधीवादी प्रोफेसर रामजी बाबू 77 में सांसद बने थे, मुंबई धर्मयुग कार्यालय आए, तो इस लेख के बारे में पूछा, गणेश मंत्री जी

ने मिलाया, तो कहा कि मैं समझा था कि कोई अधेड़ या बुजुर्ग होगा। तारीफ की। युवा था, उत्साह बढ़ा। इस तरह पत्रकारिता में रहते हुए राजनीति पर लिखता था कि यह कैसी होनी चाहिए? अवसर मिला, राजनीति में अंदर आया।

अब पत्रकारिता और राजनीति के बीच क्या रिश्ता होना चाहिए? मुझे लगता है कि जो, जहाँ जिस पेशे या काम में है, उस समय उसे अपना वह काम, विवेक और समर्पण के साथ करना चाहिए। आपको पहले भी कई नाम बताया कि किस-किस पेशे से लोग राजनीति में आए। एक और नाम बताता हूँ, वीके कृष्ण अय्यर साहब का। भारत के लीजेंड्री ज्यूरिस्ट माने गए। इन्होंने अपनी राजनीति की शुरुआत नंबूदिरिपाद की सरकार में एक मंत्री के रूप में की थी। बाद में वे भारत के मुख्य न्यायाधीश बने। इसी तरह पहले भी बताया केएस हेगड़े साहब के बारे में। राज्यसभा सांसद बने। फिर वापस गए न्यायिक सेवा में। सुप्रीम कोर्ट में रहे, इस्तीफा दिया, फिर लोकसभा अध्यक्ष बने। कई ऐसे लोग हुए। कई संपादक भी सांसद बनकर आए। असल बात यह है कि आप जब, जिस पेशे में हैं, काम में हैं, उसके प्रति कितने प्रतिबद्ध, समर्पित और ईमानदार हैं। जब आप पत्रकारिता में हैं, तो पत्रकारिता धर्म का कितना निर्वाह करते हैं, वह महत्वपूर्ण है।

पत्रकारिता का धर्म है, अपने समय के सवालों को उठाना। समाज जहाँ खड़ा है, उसे उससे आगे ले जाने का माध्यम बनना। सेंसेशन पैदा करने वाली खबरों के दौर में काम किया लेकिन वैसी पत्रकारिता के विपरीत चलकर, अपनी मान्यताओं के अनुरूप। एक प्रसंग बताता हूँ। अयोध्या में घटना हुई, उसकी वजह से कई जगहों पर दंगे हुए। संभवत: उस समय हम पहले थे, जिसने प्रेस काउंसिल से शिकायत की कि कैसे अखबारों ने दंगे कराए हैं, इसकी जाँच हो। दंगों में अखबारों की भूमिका की जाँच हो। प्रेस काउंसिल की टीम रांची आई। रघुवीर सहाय सदस्य के रूप में उस समय रांची आए। शायद सुप्रीम कोर्ट जज रहे सरकारिया साहब उन दिनों प्रेस काउंसिल के चेयरमैन थे। उनके नेतृत्व में प्रेस काउंसिल का पूरा बेंच रांची आया था, मेरे कंप्लेन के आधार पर पूरी सुनवाई करने। जिला प्रशासन के हॉल में खुली सुनवाई हुई। मैंने स्थानीय अखबारों का नाम लेकर शिकायत की। खुद ही अपने पेशे के खिलाफ। यह मेरी अंतिम शिकायत थी। इसमें अखबारों को दोषी माना गया। हमारे अखबार को तब 'मुसलमानों का अखबार' कहा गया। परचे बाँटे गए। हमारे प्रसार विभाग का दबाव अलग था, पर संपादकीय स्वायत्तता पर अखबार चलाया। अपने कार्यालय में सामूहिक बैठक सभी विभागों की बुलाई। बताया कि अखबारों का धर्म क्या है? सच और सही छापना। उन्माद के दौर में भले हमारा अखबार तुरंत न बिके, पर ऐसे उसूलों से समझौता नहीं। कारण यह था कि प्रसार विभाग ने शिकायत की थी कि अखबार का कैश सेल नहीं हो रहा। जिनमें अयोध्या घटना की सनसनीखेज चीजें छप रही हैं, वे बिक रहे हैं। सभी विभागों के लोगों को बताया कि हमारी अयोध्या की खबरों का स्रोत क्या

विचारों और वादों ने ही मानव इतिहास को अलग-अलग मोड़ पर बदला और प्रभावित किया है। हालाँकि उनकी जगह अब टेक्नोलॉजी ने ले ली है। पर, जब हमारी पीढ़ी पढ़ रही थी, तब जेपी आंदोलन शुरु हुआ। आप पाएँगे कि आंदोलन में ऐसे ही विचारधारा के युवा ज्यादा जुड़े और इन्हीं विचारधाराओं से प्रभावित युवा तब पत्रकारिता में भी आ रहे थे। आजादी के दौरान जो पत्रकारिता में आ रहे थे, वे आजादी की लड़ाई के मूल्यों से प्रेरित और प्रभावित होकर आए। जब हम लोग आए, तब ऐसे लोगों को हमने अपने बीच देखा। वह समय भी अलग लगा। लोक-लाज, मान-सम्मान-मर्यादा का समय।

है ? कैसे हम सही हैं ? देर-सबेर हमारा सच समाज जानेगा। पर, हम उन्माद भावना में नहीं बहेंगे। इन्हीं प्रयोगों से हमारी साख बनी। ऐसी कई बड़ी घटनाएँ हैं, उपभोक्ताओं के हित के पक्ष में खड़े होकर करोड़ों के विज्ञापन छोड़े। सरकारों के पाप उजागर करने के कारण न जाने कितने करोड़ के विज्ञापनों का नुकसान हुआ होगा। एक-एक घटना याद है। पर, इन्हीं ईमानदार प्रयोगों से अखबार की साख बनी। जड़ें मजबूत हुईं, जो आज भी बनी हुई हैं। दीर्घकाल में अखबार को इस साख के रास्ते चल कर विज्ञापन मद में भी कई गुना लाभ हुआ। प्रसार में तो उस राज्य में अव्वल हुआ ही। एक बार शराबबंदी के खिलाफ गाँव-गाँव जाकर हमने अभियान चलाया। डायन प्रथा, अंधविश्वास के खिलाफ वही काम किया। टीचर अगर नहीं पढ़ाते थे, तो शिक्षकों के खिलाफ भी लिखने का अभियान चलाया। यह जानते हुए भी कि एक बड़ा ताकतवर वर्ग अखबार नहीं पढ़ेगा, लेकिन हमारी टीम ने ऐसा किया। बड़ा विरोध हुआ, पर समाज हित - देश हित में ऐसे अनेक काम किए। गुड न्यूज का स्तंभ शुरू हुआ। सोशल आडिट का काम भी अखबार में शुरू करवाया। मूल बात यह है कि जब पत्रकारिता में हैं, तो पत्रकार की तरह काम करें। उसके धर्म का अनुपालन करें। जब राजनीति में हैं, तो राजनीति को समझें। राजनीति, समाज को बदलने का माध्यम है। कैसे सिस्टम प्रभावी हो, संसद प्रभावी हो, विधायिका असरदार हो, सदन में सिर्फ बहस न हो, हल भी निकले, इस दिशा में कोशिश हो। पत्रकारिता और राजनीति, दोनों समाज को बदलने के माध्यम हैं। दोनों के बीच स्वस्थ रिश्ते की जो कल्पना की गई है, वही कायम रहे। दोनों अपने धर्म का पालन करें। जहाँ तक ताकत की बात है, तो पत्रकारिता की ताकत को काफी प्रभावी और दूरगामी माना गया है। हमारे यहाँ तो शब्द को ब्रह्म माना गया, लेकिन शब्द वह जिसका सत्व सच के साथ हो। विज्ञापन से निकले हुए शब्द नहीं। पेड न्यूज, न्यूज यू कैन यूज, पेज थ्री की पत्रकारिता ने शब्दों के ब्रह्मत्व को खत्म किया है। उसके सत्व और साख को खत्म किया है।

आज लोग भूल गए हैं, एक दौर आया कि गांधी ने विज्ञापन लेना बंद कर पत्रकारिता की। आज इस पर पत्रकारों को विचार करना चाहिए। अधिक मुनाफा की जो पत्रकारिता है, उसके लिए सिर्फ अखबार मालिकों को दोष नहीं देता। आज एक अखबार शुरू करने के लिए कितने करोड़ चाहिए, हर कोई जानता है। इसलिए पत्रकारिता के मूल तत्व अप्रभावी होते जा रहे हैं। पत्रकारिता और पत्रकारों के असर अब कितने हैं, लोकप्रतिष्ठा अब कितनी है, यह खुद पत्रकारों से सुनता हूँ। इसी तरह राजनीति का प्रसंग है। गांधी ने क्या कहा था ? साधन और साध्य के बीच रिश्ता। उधर पत्रकारिता भटकी, इधर राजनीति भी। गांधी ने राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिए दर्जनों मापदंड तय किए। हम उस पर कितने खरे हैं ? दोनों समाज बदलाव के माध्यम हैं। दोनों को आत्म विश्लेषण करना चाहिए। गीता में कहा गया है - महाजनो येन गता सो पंथा। बड़े लोग जिस रास्ते जाएँगे, समाज के अन्य लोग उसी रास्ते का अनुकरण करेंगे। इस तरह नेतृत्व कर रहे लोगों को अतिरिक्त सजग रहना चाहिए।

सवाल : *आप पर यह आरोप लगा कि आपने पत्रकारिता का और जिस अखबार में काम करते थे, उसका नीतीश कुमार और बिहार सरकार के पक्ष में खबर लिखने या माहौल बनाने में पक्ष लिया, जिसके एवज में आपको राज्यसभा भेजा गया।*

जवाब : हाँ, ऐसे आरोप लगे। मैं मानता हूँ कि सार्वजनिक जीवन में हैं, तो लोगों को आरोप लगाने का हक है। लेकिन उस आरोप पर मैं क्या सोचता हूँ, उस पक्ष को रखने का मेरा भी धर्म है। मैंने हमेशा सामूहिक रूप से पत्रकारिता की। टीम के साथ मिलकर। हम सबने मिलकर व्यवस्थागत कमियों को उजागर करने का काम किया। उसी तरह अच्छे काम की प्रशंसा भी की। आप याद कीजिए बिहार को। सन 2005 से पहले के बिहार को। शाम के बाद पटना स्टेशन से कोई पटना शहर

स्थित अपने घर नहीं जाता था। पटना से छपरा 70 किलोमीटर जाने में न जाने कितने घंटे लगते थे। कानून-व्यवस्था की बात दुनिया की खबरों की सुर्खियाँ थीं। सड़कों की हालत कैसी थी? सामाजिक हालात कैसे थे? दुनिया के बड़े पत्र गार्डियन, टाइम, न्यूजवीक, इकोनामिस्ट आदि ने लिखा कि बिहार लाइलाज है अराजक है, यह वह समय था कि देश के दूसरे हिस्से में बिहार की खबरें बमुश्किल चार लाइन छपती थी। देश-दुनिया में अव्यवस्था-कुव्यवस्था का विशेषण बन गया था, यह राज्य। मुख्य रूप से भयावह अपराध की खबरें। बाद में दुनिया में प्रतिष्ठित इन्हीं पत्रिकाओं न्यूजवीक, गार्डियन, टाइम, इकोनामिस्ट वगैरह ने नीतीश कुमार के आने के बाद लिखा कि बिहार में कितना परिवर्तन हुआ है। देश के कुछ बड़े अर्थशास्त्रियों ने लिखा कि जो बिहार देश पर बोझ था, वह राज्य डबल डिजिट में ग्रोथ करने लगा है। क्या बिहार का अखबार होने के कारण हमारा धर्म नहीं था बिहार के इस परिवर्तन से लोगों को अवगत कराना? हम तो वही कर रहे थे। आप याद कीजिए, बिहार के सारे अखबारों पर प्रेस काउंसिल में एक आधारहीन आरोप लगा कि वे सरकार के पक्ष की खबरें छापते हैं। प्रेस काउंसिल के तत्कालीन चेयरमैन थे, सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश रहे मार्कण्डेय काटजू। प्रेस काउंसिल ने एक नोटिस जारी किया सभी अखबारों को कि आप लोग सरकार के दबाव में पत्रकारिता कर रहे हैं। हम इकलौते थे, जिन्होंने उनको लंबा लिखित दस्तावेज भेजा कि हमने कितनी खबरें सरकार के खिलाफ छापीं? हमने जो दस्तावेज उन्हें दिए, उसे अखबार में तीन पेज में छापा, ताकि पाठक भी जाने कि प्रेस काउंसिल का यह आरोप नितांत गलत और निराधार था।

हमारे अखबार में यह जरूर होता रहा कि देश-दुनिया में बिहार के बदलाव की जो खबर छपती रही, जो बिहार नहीं पहुँचती थी, उनको भी हमने छापा। आलोचनात्मक या व्यवस्थागत कमियों की खबरों के साथ-साथ। लेकिन सिर्फ

गांधी ने क्या कहा था? साधन और साध्य के बीच रिश्ता। उधर पत्रकारिता भटकी, इधर राजनीति भी। गांधी ने राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिए दर्जनों मापदण्ड तय किए। हम उस पर कितने खरे हैं? दोनों समाज बदलाव के माध्यम हैं। दोनों को आत्म विश्लेषण करना चाहिए। गीता में कहा गया है - महाजनो येन गता सो पंथा। बड़े लोग जिस रास्ते जाएँगे, समाज के अन्य लोग उसी का अनुसरण करेंगे। इस तरह नेतृत्व कर रहे लोगों को अतिरिक्त सजग रहना चाहिए।

बिहार या राजनीति के मामले पर ही नहीं। विज्ञान से लेकर बदलती दुनिया के बारे में श्रेष्ठ चीजें छपीं। कैसे उन दिनों अखबार की प्रसार संख्या बढ़ी थी। अब यह सोशल मीडिया का दौर है। बिना जवाबदेही का अराजक समय। कोई किसी के बारे में कुछ भी कह-बोल-लिख रहा है। दुनिया के दूसरे मुल्कों में इस मीडिया को लेकर गंभीर बहस चल रही है। पर, हम नींद में हैं। इसलिए मेरे जैसे अति सामान्य इंसान के लिए भी लोग ऐसी व्याख्या करने को स्वतंत्र हैं।

सवाल : *आपको सांसद बने पाँच साल हो गए। पिछले पाँच सालों में आपने क्या किया?*

जवाब : राजनीति में एक सांसद की जो सही भूमिका हो सकती थी, उसी रास्ते चलने की कोशिश की। राजनीति समाज बदलाव का सशक्त माध्यम है। संसदीय राजनीति उस बदलाव की राजनीति का एक हिस्सा है। पहला काम, जो कह सकता हूँ, वह यह कि पत्रकारिता में रहते हुए एक राजनीतिक व्यक्ति से अपेक्षा रखता था कि राजनीति में जाने के बाद, सांसद-विधायक आदि बनने के बाद उसका दर्प या अहंकार न बढ़े। अचानक रुतबा न बढ़े। वह विशिष्ट न बने, न दिखाई दे। मैं यह कह सकता हूँ कि अगर मैं सांसद

बना, तो इस धर्म का निर्वाह किया। इस तरह का आचरण कि जिसकी शिकायत समाज करता है, उससे खुद को बचाकर रखने की सचेत कोशिश करता हूँ। पत्रकारिता में भी अनाम संपादक ही रहा। कभी मुख्यमंत्री, राजभवन या बड़े लोगों के पास अकारण या बिना बुलाए नहीं गया। कभी गाड़ी पर प्रेस या संपादक लिखवाकर नहीं चला। इसी तरह सांसद रहते हुए कोशिश कर रहा हूँ। साथ ही सांसद रहते हुए जो संभव है, था, वह करने की कोशिश कर रहा हूँ। पार्टी का काम या धर्म अलग रहा। बिहार में चुनाव था तो पार्टी के काम से संसद से अनुपस्थित रहा। एक बार तीन चार दिनों तक अस्वस्थ रहा, तो संसद से अनुपस्थित रहा। यह अलग बात है कि संसद नियमित नहीं चलती थी या हंगामा होता था। मुझे लगा कि यह सही नहीं हो रहा, तो सांसद बनने के बाद पहला लेख लिखा कि संसद का मकसद क्या था और यह हंगामा, स्थगन, नारेबाजी, बेल में जाना आदि क्या है। तब सांसद बनने का पहला अनुभव लिखा। लगा कि इन सवालों पर जो सोचता हूँ, बड़ी अदालत यानी जनता के बीच जाकर बताया। यह किया। सार्वजनिक रूप से बताया। टीवी पर बोला। जब उपसभापति बना तो भी संसद की स्थिति पर लिखा। पहले के जो सांसद रहे, जिन्होंने गंभीर बहस में हिस्सा लिया, संसद की लाइब्रेरी में ढूँढकर उन्हें पढ़ता रहा, पढ़ता हूँ। संसद की कमिटियों का काम किया। जिन कमिटियों में रहा, पूरी तैयारी और अध्ययन के साथ भाग लेता था। ईमानदारी से अपना श्रेष्ठ देने की कोशिश की। कमिटियों के लगभग सभी अध्यक्षों ने कंप्लीमेंट किया। सब बहुत स्नेह से मुझे प्रोत्साहित करते रहे। उनमें खासकर श्री भुवनचंद्र खंडूरी के बारे में कहना चाहूँगा। वह डिफेंस पार्लियामेंट्री कमिटी के चेयरमैन रहे। उनकी सादगी, ईमानदारी, काम करने का तरीका बहुत प्रभावित किया। फिर इंटरनेशनल फोरम पर जाने का मौका मिला, तो अपनी भूमिका का निर्वहन किया। बाहर से पत्रकार रहते हुए जो मैं लिखता था, सांसद फंड के बारे में, तो आज भी मानता हूँ कि इसका एक स्वरूप बनना चाहिए। यहाँ आकर पाया कि आमतौर पर इसकी विफलता या भ्रष्टाचार के लिए सिस्टम दोषी है। लेकिन धारणा है कि सारा दोष राजनीतिज्ञों का है। इसलिए मैंने तय किया कि सांसद फंड का मैं सीधे इस्तेमाल नहीं करूँगा। बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश जी के सुझाव से और अपनी परिकल्पना से पहल की कि बिहार में रिवर रिसर्च सेंटर बने। वह काम चल रहा है।

पटना आइआइटी में दो संस्थानों के लिए एक सेंटर फार इंडेंजर्ड लैंग्वेज, दूसरा सेंटर फार अर्थक्वेक इंजीनियरिंग एंड रिसर्च, सारा पैसा इन्हीं दो संस्थानों के निर्माण के लिए दिया। मुझे मालूम भी नहीं कि कौन सी एजेंसी काम कर रही है, कौन ठेकेदार है। जिला प्रशासन का दायित्व है, उन्हीं के जरिये काम हो रहा है। जैसे पत्रकारिता में फेसलेस रहने की कोशिश करता रहा, वैसे ही यहाँ भी। मैं पहले भी मानता था, बोलता था, लिखता था कि श्रेष्ठ संस्थाएँ ही समाज को आगे ले जाती हैं। बिहार में ऐसी संस्थाओं की जरूरत थी। बिहार में नदी संस्थान की जरूरत थी, तो वह किया। बिहार के बच्चे बाहर पढ़ने जाते हैं। मैंने सांसद फंड का उपयोग किया है कि बिहार में, आइआइटी पटना में श्रेष्ठ संस्थान बने। इसे गिलहरी की भूमिका कहिए। मुझे विश्वास है कि आने वाले समय में ये संस्थाएँ सेंटर आफ एक्सेलेंस बनेंगी। आदर्श गाँव का चयन करना था। मैंने ऐसे गाँव का चयन किया, जहाँ से मैं कभी चुनावी राजनीति में नहीं जा सकता। रोहतास जिले में। सासाराम संसदीय क्षेत्र में। गांधी के साथ रहने वाले भवानी दयाल संन्यासी के गाँव को चुना। संतोष है कि एक ऐसे व्यक्ति के नाम पर गाँव का चयन किया, जिसे बिहार भूल गया है। देश अब याद नहीं करता। वहाँ से कोई मेरा राजनीतिक लाभ नहीं है। जब मौका मिला तो मंत्रियों को पत्र लिखा। लिखा कि सांसद कोटे से केन्द्रीय विद्यालय में नामांकन की प्रक्रिया खत्म हो। मैंने अपने कोटे से एडमिशन कराया तो

राजनीतिक कार्यकर्ताओं या पत्रकारों के बच्चों का ही कराया। हाँ, कुछेक परिचित भी आए। एक मेरा ड्राइवर था पटना में, उसके बच्चे का कराया। एक मेरे मास्टर साहब थे, उनकी पारिवारिक रंजिश में हत्या हो गई थी, उनके प्रपौत्र का। अधिसंख्य तो पत्रकार और पार्टी के राजनीतिक कार्यकर्ता रहे। यही सब करने की कोशिश जारी है। साथ ही देश के अलग-अलग कोने में जाकर युवाओं से, लोगों से संवाद करने की कोशिश की।

सवाल : *राज्यसभा को पीछे का दरवाजा कहा गया था। बाद में पैसे वाले, ताकतवर लोग भी यहाँ पहुँचने लगे, यह आरोप लगा। इस सदन में आपका कैसा अनुभव रहा ?*

जवाब : राज्यसभा का जो गठन हुआ, उसके लिए जो बहस हुई, उसे पढ़ना चाहिए। यह सरासर गलत और राजनीति प्रेरित आरोप है कि यह पीछे का दरवाजा है। माना गया कि लोकसभा में जो लोग चुन कर आते हैं, वे जनता से सीधे चुनकर आते हैं। उन पर सीधे जनदबाव होता है। कई बार जन दबाव में, भावनाओं के आधार पर कानून बन सकते हैं। ऐसी स्थिति में सोचा गया कि राज्यसभा में जो लोग होंगे, वे गंभीरता से विचार करेंगे। भावनाओं के आधार पर काम नहीं करेंगे। इसलिए पढ़े-लिखे या अनुभवी या समझदार लोगों को लाया जाएगा। ऐसे ही लोग पहले आते थे। दिनकर जी, ताराशंकर बंदोपाध्याय, डा. रघुवीर, लोकेश चन्द्र मिश्र, राधाकुमुद मुखर्जी जैसे कई असाधारण लोग इस सदन में रहे। बाद के दिनों में भटकाव आया। जैसे कि पत्रकारिता में भटकाव की बात बताई, वैसे ही राजनीति में भी यह हुआ। विजय माल्या उसके बड़े उदाहरण हुए। लेकिन राजनीति की मूल धारा यह नहीं। आज भी राज्यसभा में जब बहस होती है, तो उसका स्तर देख लीजिए, यह सही है कि राजनीतिक दल अपने हारे लोगों को भी यहाँ भेजते हैं, लेकिन आप राज्यसभा की बहस देख लीजिए। जीएसटी पर बहस देखिए। पक्ष-विपक्ष दोनों का। अभी जब 12 घंटे सवर्ण गरीबों को आरक्षण देने की बात पर बहस चली, उसे देख लीजिए। जब-जब शांति से बहस चले, तो वहाँ बहस की गंभीरता देखिए। उस तरह से अगर सदन चले या बहस, तो जिस चीज के लिए राज्यसभा बनी थी, उसकी भूमिका देख सकते हैं।

सवाल : *संसद को या विधानमंडलों को लाइटहाउस कहा जाता है। लाइटहाउस की लय लड़खड़ाई हुई है। पत्रकारिता में आपने इस पर कई बार लिखा। अब आप उसी लाइटहाउस में हैं। कैसे देख-आँक रहे हैं ?*

जवाब : लोकतंत्र में सदन को हम मंदिर कहते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था का संचालन या प्रकाश स्तंभ का काम यही तो करते हैं, लोकसभा, राज्यसभा, विधानसभा, विधान परिषद। कहा जाता है कि हाल के कुछ वर्षों में वह भूमिका नहीं रही। राज्य की विधानसभाओं का हाल देख लीजिए। तनाव की स्थिति बन जाती है या बनी रहती है। कई बार अनियंत्रित स्थिति होती है। कोई अध्ययन करे कि किसी राज्य में क्या गंभीर समस्याएँ हैं और उन पर कितनी बात या बहस वहाँ होती है या हल निकालने की कोशिश हुई ? वहाँ आप पाएँगे कि प्रकाश स्तंभ कैसे धुंधला हुआ है। शोर, हंगामा, सदन न चलने देना, आत्मसंयम न होना, एक साथ विघ्न डालना। राजनीति में भाषा या संयम की जो मर्यादा है, उसे हम लोगों ने कहाँ पहुँचा दिया है ? संसद या विधानमंडलों में यह स्थिति रहेगी, तो भावी पीढ़ी क्या अनुसरण करेगी ? यह एक चिंताजनक बात है। मुझे उम्मीद है कि अगर राजनीति ने इस पर गौर नहीं किया, तो धीरे-धीरे लोगों का राजनीति से विश्वास उठेगा। इस तरह का आचरण, जिसमें अहंकार, अशालीनता है, वह कहाँ लेकर जाएगी ? अपने समय के बड़े सवालों पर बहस करने या हल निकालने के लिए लोकतंत्र के सबसे प्रभावी मंच अगर तत्पर नहीं हैं, तो फिर नयी पीढ़ी की आस्था लोकतंत्र पर कैसे मजबूत होगी ?

(लेखक, तहलका, आज तक जैसे संस्थानों में पत्रकारिता कर चुके हैं। फिलहाल 'एशियाविल' न्यूज पोर्टल से संबद्ध पत्रकार हैं।)

विश्व रेडियो दिवस और रेडियो लाइसेंस

■ **अरविन्द कुमार सिंह**

विश्व रेडियो दिवस पर रेडियो लाइसेंस से जुड़ी कुछ जानकारी और तस्वीर साझा कर रहा हूँ। यह तस्वीर दसअसल श्री वीरेंद्र कुमार सिंह, तत्कालीन निदेशक, डाक प्रशिक्षण केंद्र, सहारनपुर के सौजन्य से हासिल हो पाई। बहुत-सी पुरानी सामग्रियों को उन्होंने सहेजकर रखवाया है। इसे हमारे साथी ने बहुत सलीके से शूट किया। अन्यथा अब रेडियो लाइसेंस देखने को भी नहीं मिलता। संचार क्रांति के दौर में जी रही नयी पीढ़ी को शायद ही इस बात की खबर हो कि भारत में 1924 से 1985 तक रेडियो के लिए वैसे ही लाइसेंस लेना पड़ता था जैसे बंदूक के लिए। लाइसेंस जारी करने का काम भारतीय डाक विभाग करता था। इसी लाइसेंस प्रणाली से लंबे समय तक आकाशवाणी को भारत में एक मजबूत आर्थिक आधार मिला। सूचना और प्रसारण विभाग भारत सरकार की ओर से 15 अगस्त 1924 से डाक विभाग को रेडियो लाइसेंस जारी करने तथा इससे संबंधित फीस वसूलने का काम सौंपा गया था। रेडियो की शुरुआत के बाद ही लाइसेंस प्रणाली शुरू हो गई थी। बाद में टेलीविजन की शुरुआत के साथ लाइसेंस जारी करने और फीस वसूलने का काम भी डाक विभाग को ही मिला। बाद में इसी प्रकार 1 नवंबर 1981 से वीडियो कैसेट रिकार्डर के लिए भी लाइसेंस प्रणाली लागू हुई थी। रेडियो के मामले में समय के साथ सरकार ने उदार नीति अपनायी और ग्रामीणों को राहत देने के साथ 25 अगस्त 1980 से एक और दो बैंड के रेडियो और ट्रांजिस्टर की लाइसेंस फीस खत्म हो गई। लेकिन रेडियो लाइसेंस प्रणाली 1924 से 1985 तक चलती रही। बाद में सरकार ने रेडियो रिसीविंग लाइसेंस प्रणाली के समापन का फैसला 1985 में किया। भारत में रेडियो का नियमित प्रसारण 23 जुलाई 1927 से मुंबई से इंडियन ब्राडकास्टिंग कंपनी ने शुरू किया। उसके भी पहले 31 जुलाई 1924 से मद्रास प्रेसीडेंसी रेडियो क्लब ने छोटे-मोटे कार्यक्रमों का प्रसारण शुरू कर दिया था। सन 1965 में तब के संचार मंत्री सत्यनारायण सिंह के

रेडियो सेट बाहर सफर पर ले जाने वाले को लाइसेंस अपने साथ रखने और सेट बेचने पर उसकी प्रविष्टि कराने की सुविधा में आसानी हो गई। भारत में 1971 में 1.17 करोड़ रेडियो लाइसेंस थे, जिनकी संख्या आपातकाल के समापन तक 1977 में बढ़ कर दो करोड़ 97 हजार हो गई। बहरहाल बाकी जानकारियाँ फिर कभी... अभी इस लाइसेंस के साथ वीरेंद्रजी और उनके साथ सहारनपुर के वरिष्ठ पत्रकार आलोक तनेजा और अन्य पत्रकार मित्रों की कुछ तस्वीरें भी साझा कर रहा हूँ।❑❑

विशेष आदेश पर पासबुक के आकार में रेडियो लाइसेंस जारी करने का फैसला हुआ। पहले कागजों पर ही नवीनीकरण किया जाता था। इससे

रेडियो की लोकप्रियता और विकास यात्रा पर राष्ट्रीय कार्यशाला

कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय के जनसंचार विभाग द्वारा विश्व रेडियो दिवस के अवसर पर रेडियो की लोकप्रियता और विकास यात्रा पर केन्द्रित राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। मुख्य वक्ता देश के जाने-माने वरिष्ठ रेडियो उद्घोषक मनोहर महाजन रहे। उन्होंने कहा कि भाषा पर अधिकार से युवाओं को आवाज के क्षेत्र में रोजगार के कई अवसर मिल सकते हैं। व्यक्ति की पहचान के लिए जिस तरह से चेहरे की जरूरत होती है उसी तरह आवाज की भूमिका भी मुख्य रहती है। आवाज के जादू से कल्पनाओं को नये पंख मिलते हैं। रेडियो में काम के दिनों को याद करते हुए अपने संघर्ष एवं तत्कालीन भारतीय रेडियो परिस्थितियों से विद्यार्थियों को अवगत कराया। साथ ही रेडियो के क्षेत्र से जुड़ी विभिन्न बारीकियों की जानकारी दी।

प्रख्यात उद्घोषक एवं रंगकर्मी मिर्जा मसूद का विशेष वक्तव्य हुआ जिसमें उन्होंने विद्यार्थियों के साथ रायपुर रेडियो के विभिन्न आयामों पर चर्चा की। रेडियो के महत्व को बताते हुए कहा कि साक्षरता पूर्व में समाज को जोड़ने का सबसे बड़ा काम रेडियो ने किया है। आज के संक्रमण दौर में भी रेडियो ने अपनी अलग पहचान बना कर रखी हुई है। विभाग ने मिर्जा मसूद पर बनाए गए विशेष साक्षात्कार कार्यक्रम को दिखाया। विशिष्ट वक्ता विश्वविद्यालय के कुलसचिव डा. आनन्द शंकर बहादुर रहे। उन्होंने रेडियो में हो रहे श्रव्य और दृश्य के संक्रमण पर अपनी बात रखी। पुराने उद्घोषकों को भी याद किया।

रिसोर्स पर्सन के रूप में हसन खान, नीति जैन एवं गोपा सान्याल की भागीदारी रही। इस कार्यशाला में रूसेन कुमार प्रबंध संपादक इंडिया सी.एस.आर. नेटवर्क रायगढ़, संजीव शर्मा सचिव पीआरएसआई रायपुर चैप्टर एवं दयानंद अवस्थी प्रमुख संयोजक रामदास द्रौपदी फाउंडेशन रायपुर सहयोगी रहे। कार्यशाला में विद्यार्थियों के लिए विशेष प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम आयोजित किया गया जिसमें विजेताओं को उपहार स्वरूप पुरस्कार वितरित किए गए। कार्यशाला में मीडिया जगत से जुड़े बुद्धिजीवी, लेखक, पत्रकार, शिक्षक और विद्यार्थियों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।❑

स्मृति शेष

हमें गांधी की जरूरत थी, है और रहेगी

मनीषी संपादक नारायण दत्त जी की स्मृति में प्रतिवर्ष 17 फरवरी को आयोजित की जाने वाली नारायण दत्त स्मृति व्याख्यानमाला के छठवें आयोजन में 'गांधी 150 वर्ष' विषय पर बोलते हुए गोरखपुर विश्वविद्यालय से आए इतिहास के प्रोफेसर हिमांशु चतुर्वेदी ने गांधी और भारत के महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए गांधी विचार को हर समस्या का समाधान बताया। मुंबई विश्वविद्यालय की राष्ट्रीय सेवा योजना और सिंधी विभाग के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित कार्यक्रम में श्री चतुर्वेदी ने कहा कि गांधी जी ने कभी किसी के साथ की आशा या उसके भरोसे अपना आंदोलन नहीं चलाया, बल्कि वे अकेले ही चल पड़ते थे।

भारतीय राजनेताओं और जनता में उनके प्रति इतना विश्वास था कि वे उनसे असहमत होते हुए भी यह मानते थे कि गांधी ही एकमात्र विकल्प हैं जिससे भारत देश आजाद और उन्नति की ओर अग्रसर हो सकता है। अध्यक्ष के रूप में 'नवनीत' के संपादक विश्वनाथ सचदेव ने पूरी दुनिया में गांधी की स्वीकार्यता और उनके प्रभाव को व्यक्त करते हुए गांधी के भीतर बसे भारत और भारत में व्याप्त गांधी पर विचार रखे।

कार्यक्रम का संचालन अमित शर्मा ने किया और आगंतुकों का आभार कार्यक्रम के संयोजक हूबनाथ पांडे ने माना। दूसरे सत्र में बहुभाषी काव्यगोष्ठी का आयोजन किया गया। अध्यक्ष हस्तीमल हस्ती, संचालक दिलीप जवेरी तथा अन्य कविगण -- कमर सिद्दीकी, दैवता पाटील, प्रीती, श्यामल गरुड़, उर्वशी मनुप्रसाद पंड्या, मेनका शिवदासानी और हेमंत शंकर ने अपनी रचनाओं का पाठ किया। ❑

अच्छा इंसान बनने के लिए साहित्य पढ़ना जरूरी : रघु ठाकुर

'युगतेवर' पत्रिका के संपादक श्री कमलनयन पांडेय 12वें पं. बृजलाल द्विवेदी सम्मान से सम्मानित

प्रख्यात साहित्यकार एवं 'युगतेवर' पत्रिका के संपादक श्री कमलनयन पांडेय को 12वें पं. बृजलाल द्विवेदी स्मृति अखिल भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान से सम्मानित किया गया। भोपाल के गांधी भवन में मीडिया विमर्श पत्रिका एवं मूल्यानुगत मीडिया अभिक्रम के संयुक्त तत्वावधान में 13 फरवरी को आयोजित सम्मान समारोह में उनको सम्मानित किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि प्रख्यात सामाजिक कार्यकर्ता एवं विचारक श्री रघु ठाकुर ने कहा कि पत्रकारिता की डिग्री के लिए साहित्य पढ़ना भले जरूरी न हो लेकिन एक अच्छा इंसान होने के लिए साहित्य पढ़ना जरूरी है। पत्रकारिता के लिए विज्ञापन एक रोग है, किंतु विज्ञापन के बिना पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन कठिन है।

श्री रघु ठाकुर ने कहा कि आज के अखबारों में नेताओं के बारे में, उनके निजी जीवन के बारे में तो बहुत कुछ छपता है लेकिन साहित्यकारों के बारे में, उनके निजी जीवन के बारे में नहीं छपता है। साहित्यकारों के बारे में, उनके सृजन के बारे में लोगों को जानकारी देनी चाहिए। अखबारों में साहित्यकारों को प्रमुखता से स्थान देना चाहिए। अगर अखबार पढ़ने से तनाव पैदा होता है, बेचैनी होती है, तो होनी भी चाहिए। समाज में व्याप्त खामियाँ और समस्याओं को बदलने की शक्ति होनी चाहिए। अगर समाज में लोगों के साथ अन्याय हो रहा है तो उसके लिए बेचैनी होनी चाहिए, उसके साथ खड़ा होना चाहिए।

सच्चा राष्ट्रवादी वही होगा जो सच्चा विश्ववादी होगा

राष्ट्रवाद के संबंध में श्री रघु ठाकुर ने कहा कि एक सच्चा राष्ट्रवादी वही होगा जो सच्चा विश्ववादी होगा। अगर सभी देश अपनी सीमाओं को छोड़ने के लिए तैयार हो जाएँ तभी असली राष्ट्रवाद की नींव रखी जा सकती है। मीडिया और राष्ट्रवाद के बीच संघर्ष की स्थिति नहीं होनी चाहिए।

पत्रकारिता के केंद्र में मनुष्य होता है - प्रोफेसर कमल दीक्षित

कार्यक्रम के मुख्य वक्ता प्रोफेसर कमल दीक्षित ने कहा कि पत्रकारिता देश और समाज के लिए नहीं होती, बल्कि मनुष्यता के लिए होती है।

इसलिए पत्रकारिता के केंद्र में मनुष्य होना चाहिए। उन्होंने कहा कि पिछले कुछ वर्षों में पत्रकारिता सामाजिक सरोकारों और मूल्यों से कट गई है। मीडिया का मूल्यानुगत होना आवश्यक है। पिछले कुछ वर्षों से हम इसी दिशा में प्रयास कर रहे हैं।

समाज के लिए जरूरी है असहमति - कमलनयन पांडेय

त्रैमासिक पत्रिका 'युगतेवर' के संपादक श्री कमलनयन पांडेय ने कहा कि समाज में असहमति जरूरी है। जहाँ असहमति नहीं होती है, वहाँ सत्य का विस्फोट नहीं होता है। उन्होंने कहा कि शब्द सिर्फ शब्द नहीं होता है। शब्द संस्कृति होता है, प्रतीक होता है। उन्होंने प्रतीकों पर आधारित पत्रकारिता पर जोर देते हुए कहा कि जब रचनाकार रचना करता है तो वह प्रतीकों में रच बस जाता है। श्री पांडेय ने कहा कि शब्दों और प्रतीकों का अपना उत्कर्ष और अपकर्ष होता है। उन्होंने आदि पत्रकार नारद का उदाहरण देते हुए कहा कि कुछ लोग उन्हें चुगलखोर की संज्ञा देते हैं लेकिन यह सत्य नहीं है। उन्होंने कहा कि नारद हमेशा कमजोर और शोषित वर्ग के लिए खड़े रहे और संचार संवाद का काम किया। उन्होंने कहा कि एक पत्रकार के रूप में आज भी नारद जीवित हैं। लघु पत्रिका को परिभाषित करते हुए श्री पांडेय ने कहा कि जो संसाधन में सीमित हो लेकिन उद्देश्यों में महान हो उसे लघु पत्रिका कहते हैं। उन्होंने कहा कि लघु पत्रिकाओं ने सीमित दायरे में ही सही लेकिन पाठकों को सामाजिक सरोकारों से जोड़े रखा है। तमाम वैश्वीकरण और स्थानीयता के संघर्ष के बीच लघु पत्रिकाएँ स्थानीयता को बचाने में पूरी ताकत से लगी हुई हैं। उन्होंने कहा कि लघु पत्रिकाओं का भविष्य आन्दोलनों में ही है। अंत में लघु पत्रिकाएँ ही जनसंघर्ष और जनता का मंच बनेंगी।

इस मौके पर विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित वरिष्ठ लेखक श्री गिरीश पंकज ने कहा कि लघु पत्रिकाएँ महत्वपूर्ण दस्तावेज होती हैं, संग्रहणीय होती हैं। अखबारों की तरह हम उन्हें फेंकते नहीं हैं बल्कि संग्रहीत करके रखते हैं। 'मीडिया विमर्श' का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि इस पत्रिका के भी सभी अंक संग्रहणीय होते हैं।

बाजार सेवक के बजाय स्वामी बन गया है - विजयदत्त श्रीधर

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे पद्मश्री विभूषित प्रख्यात पत्रकार श्री विजयदत्त श्रीधर ने कहा कि पत्रकारिता को सामाजिक सरोकारों और मूल्यों पर आधारित होना चाहिए। उन्होंने कहा कि ऐसा नहीं है कि पहले बाजार नहीं थे, बाजार पहले भी थे। लेकिन आज बाजार सेवक या सहायक की बजाय स्वामी बन गया है। उन्होंने हिंदी पत्रकारिता की भाषा की चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि एक समय था, जब पत्रिकाओं ने हिन्दी गद्य के उन्नयन का कार्य किया था। लेकिन आज जबरन अँगरेजी के शब्दों को ठूँसा जा रहा है। हिन्दी को विकृत किया जा रहा है।

कार्यक्रम का संचालन दिल्ली से आईं साहित्यकार डा. पूनम माटिया ने किया। स्वागत भाषण प्रोफेसर श्रीकांत सिंह ने दिया। धन्यवाद ज्ञापन डा. बी.के. रीना ने किया।

पत्रकारिता पर केंद्रित दो पुस्तकों का विमोचन

कार्यक्रम में पत्रकारिता पर केंद्रित दो महत्वपूर्ण पुस्तकों का भी विमोचन हुआ। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के अध्येता डा. सौरभ मालवीय एवं श्री लोकेंद्र सिंह की पुस्तक 'राष्ट्रवाद और मीडिया' तथा मीडिया प्राध्यापक प्रोफेसर संजय द्विवेदी एवं वरिष्ठ टेलीविजन पत्रकार डा. वर्तिका नंदा की पुस्तक 'नये समय में अपराध पत्रकारिता' का विमोचन हुआ। आयोजन में अनेक साहित्यकारों, पत्रकारों, प्राध्यापकों और मीडिया छात्र-छात्राओं ने हिस्सा लिया।

प्रस्तुति : लोकेंद्र सिंह

खबर खबरवालों की

■ संजय द्विवेदी

अमेरिकी मीडिया कंपनी 'मैकक्लैची' दिवालिया

प्रिंट मीडिया के लिए बुरी खबरों के बीच अमेरिका के अखबार 'द सैक्रामेंटो बीट', 'द मियामी हेराल्ड' समेत 30 अन्य दैनिक समाचार पत्रों की प्रकाशक कंपनी 'मैकक्लैची' ने पिछले दिनों दिवालिया होने की घोषणा कर दी है। इसके लिए उसने अमेरिकी दिवालियापन कानून के चैप्टर 11 के तहत दिवालियापन के लिए याचिका दायर की है। यह अमेरिका का दूसरा सबसे बड़ा समाचार पत्र समूह है। फिलहाल यह कंपनी प्रिंट विज्ञापन में हो रही गिरावट और तेजी से बढ़ते डिजिटल बिजनेस की चुनौतियों का सामना कर रही है। कंपनी का रेवन्यू भी लगातार घट रहा है, जिसके चलते कंपनी को अपना कर्ज उतारने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ रही है। ऐसा इसलिए क्योंकि अधिकांश पाठक और विज्ञापनदाता अब आनलाइन की ओर अपना रुख कर रहे हैं।

कंपनी ने ये घोषणा की है कि वह क्षेत्रीय अखबारों का प्रकाशन जारी रखेगी और ऋण का बोझ कम करके इन अखबारों के डिजिटल संस्करण पर ध्यान देगी। साथ ही कंपनी ने यह भी कहा कि इस दौरान 14 राज्यों में उसके जो न्यूजरूम हैं, वह पहले की तरह काम करते रहेंगे। कंपनी के निदेशक मंडल के चेयरमैन केविन मैकक्लैची ने कहा, ''मैकक्लैची परिचालन के हिसाब से मजबूत कंपनी बनी हुई है और स्वतंत्र पत्रकारिता के लिए लगातार प्रतिबद्ध रही है। यह प्रतिबद्धता मेरे परिवार की पाँच पीढ़ियों से चली आ रही है।''

बजट से प्रिंट मीडिया को राहत

पूरी दुनिया से प्रिंट मीडिया के लिए आ रही बुरी खबरों के बीच भारत के बजट से समाचार पत्र उद्योग को राहत मिली है।

वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण द्वारा एक फरवरी को पेश किए गए बजट में न्यूज प्रिंट के आयात पर लगने वाली कस्टम ड्यूटी को आधा करने से प्रिंट मीडिया इंडस्ट्री ने राहत की साँस ली है। इससे समाचार पत्र व्यवसाय की प्रकाशन लागत में कमी आएगी। न्यूज प्रिंट और लाइटवेट कोटेड पेपर के आयात पर पिछले साल जुलाई में लगाई गई दस प्रतिशत की कस्टम ड्यूटी को अब घटाकर पाँच प्रतिशत कर दिया गया है। डिजिटल मीडिया की बढ़त के कारण पहले से ही दबाव से जूझ रही प्रिंट मीडिया इंडस्ट्री को कस्टम ड्यूटी में पाँच प्रतिशत की छूट बड़ी राहत के रूप में देखी जा रही है।

'लोकमत मीडिया समूह' के कार्यकारी निदेशक करन दर्डा का कहना है, ''न्यूज प्रिंट और लाइटवेट कोटेड पेपर के आयात पर लगने वाली कस्टम ड्यूटी में की गई कटौती का हम स्वागत करते हैं।

पिछले वर्षों के दौरान न्यूजपेपर इंडस्ट्री को तमाम चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। पिछले साल 10 प्रतिशत की कस्टम ड्यूटी लगाए जाने से यह इंडस्ट्री और दबाव में आ गई थी। ऐसे

में कस्टम ड्यूटी में की गई पाँच प्रतिशत कमी से यह दबाव कुछ कम होगा और इंडस्ट्री को इस मुश्किल दौर से निकलने में कुछ मदद मिलेगी।''

वारेन बफे भी अखबारों को कह रहे हैं अलविदा

दुनिया के सबसे ज्यादा अमीरों की सूची में शुमार और बड़े निवेशक वारेन बफे की कंपनी 'बर्कशायर हाथवे' भी अपने 31 समाचार पत्रों से पीछा छुड़ाने में लगी है। वह अपने इन अखबारों को 140 मिलियन डालर में बेचने जा रही है और इसे खरीदने वाली कंपनी है ली इंटरप्राइजेस। बफे की कंपनी जिन समाचार पत्रों को बेच रही है उनमें 'द बफेलो न्यूज' तथा 'द रिचमंड डायमंड टाइम्स' जैसे अखबार शामिल हैं। बताया जाता है कि 'बर्कशायर' के पास 'द न्यूज बफेलो' का स्वामित्व वर्ष 1977 से था और इस दौरान कंपनी ने तेजी से कई अन्य अखबारों को खरीदा था और उन्हें बर्कशायर हैथवे मीडिया के तहत संचालित किया जा रहा था। वर्ष 2012 में बफे ने अपने न्यूजपेपर पब्लिशर्स को लिखे एक पत्र में खुद को न्यूजपेपर का ऐसा आदी बताया था, जिसे ज्यादा से ज्यादा अखबार खरीदने का शौक था, लेकिन विज्ञापन रेवेन्यू में कमी के कारण बाद में वह इस बिजनेस को लेकर निराशावादी हो गए। वहीं, ली की बात करें तो यह अमेरिकी मीडिया कंपनी पहले से ही कई अखबार प्रकाशित कर रही है। इस सौदे के बारे में बफे ने एक बयान में कहा, ''इस बिजनेस में हमारी कोई रुचि नहीं थी, लेकिन सिर्फ एक वजह से बेचने को राजी हुए, क्योंकि हमारा मानना है कि इंडस्ट्री की चुनौतियों के बीच 'ली' इसे बेहतर तरीके से संचालित करने की स्थिति में हैं।''

जागरण में पदस्थापना

देश के प्रमुख समाचार पत्र दैनिक जागरण में कई संपादकों को नई पदस्थापनाएँ दी गई हैं। भोपाल में जागरण समूह के अखबार नवदुनिया में अब वरिष्ठ समाचार संपादक के पद पर संजय मिश्र को भेजा गया है। अब तक वे मुरादाबाद में जागरण के संपादकीय प्रभारी थे। बिहार में राज्य संपादक के पद पर कार्यरत मनोज झा को छत्तीसगढ़ भेज दिया गया है। वे यहाँ पर नईदुनिया के राज्य संपादक होंगे।

छत्तीसगढ़ के राज्य संपादक आलोक मिश्र अब पटना में पदस्थ किए गए हैं। प्रयागराज के संपादकीय प्रभारी मदन मोहन सिंह को गोरखपुर के संपादकीय प्रभारी की जिम्मेदारी सौंपी गई है। बनारस में काम कर रहे राकेश पांडे को प्रयागराज का संपादकीय प्रभारी बनाया गया है।

गोरखपुर में संपादकीय प्रभारी के पद पर काम कर रहे जितेंद्र त्रिपाठी अब नोएडा में सेंट्रल डेस्क पर काम करेंगे। पटना में संपादकीय विभाग में कार्यरत बसंत भारती को मुरादाबाद के संपादकीय प्रभारी के पद पर नई जिम्मेदारी दी गई है।

नविका कुमार को पदोन्नति

टाइम्स नेटवर्क ने वरिष्ठ टीवी पत्रकार नविका कुमार को पदोन्नति देकर उन्हें समूह संपादक (राजनीति) पर नियुक्त किया है। इस पद पर वे 'ईटी नाउ', 'मिरर नाउ' और 'टाइम्स डॉट कॉम' की राजनीतिक समाचार संकलन की रणनीति तैयार करने की अतिरिक्त जिम्मेदारी भी निभाएँगी। इसके साथ ही वह पहले की तरह नेटवर्क के अँगरेजी न्यूज चैनल 'टाइम्स नाउ' में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रहेंगी।

नविका कुमार देश के उन कुछ पत्रकारों में शामिल हैं जिन्हें राजनीतिक और आर्थिक खबरों में महारत हासिल है। तमाम खोजपरक समाचारों को प्रस्तुत करने का श्रेय हासिल है। नविका पिछले पंद्रह सालों से इस समूह से जुड़ी हुई हैं।

रिलायंस समूह के मीडिया कारोबार में कई बड़े बदलाव

रिलायंस समूह अब अपने मीडिया कारोबार को नए तरीके से सँभालने में लगा हुआ है। इसके तहत कंपनी कई बड़े बदलाव कर रही है। इसके तहत मीडिया और वितरण व्यवसाय को 'नेटवर्क18' में मिलाने का निर्णय किया गया है। इससे 'नेटवर्क18' मीडिया और एंटरटेनमेंट क्षेत्र में देश की अग्रणी कंपनी बन जाएगी। रिलायंस इंडस्ट्रीज ने अधिकारिक तौर पर इसकी घोषणा कर दी है। इसके बाद 'नेटवर्क18' का वार्षिक राजस्व 8,000 करोड़ हो जाएगा। 'टीवी18 ब्रॉडकास्ट', 'हैथवे केबल', 'डेन नेटवर्क' और 'नेटवर्क18' मीडिया और इन्वेस्टमेंट्स कंपनियों के बोर्ड की बैठक में इस विलय को स्वीकृत दी गई।

रिलायंस इंडस्ट्रीज ने एक बयान में बताया कि समाचार से लेकर मनोरंजन (लीनियर और डिजिटल) के सभी कंटेंट और देश के सबसे बड़े केबल डिस्ट्रीब्यूशन नेटवर्क को एक इकाई बनाने के बाद कंपनी की दक्षता बढ़ाने में मदद मिलेगी। कंपनी के इस फैसले के बाद 'टीवी18 ब्रॉडकास्ट' के 100 शेयरों के बदले 'नेटवर्क18' के 92 शेयर मिलेंगे। 'हैथवे केबल' के 100 शेयरों के बदले 'नेटवर्क18' के 78 शेयर मिलेंगे। विलय के बाद 'डेन नेटवर्क' के 100 शेयरों के बदले 'नेटवर्क18' के 191 शेयर मिलेंगे। कंपनी ने बताया कि एक फरवरी 2020 के बाद से ही रिलायंस समूह की सभी मीडिया और मनोरंजन की सारी कंपनियाँ 'नेटवर्क18' की सहायक कंपनियाँ होंगी।

रुचि दुआ अब हिंदुस्तान टाइम्स डिजिटल के साथ

जी समूह की समाचार वेबसाइट इंडिया डाट काम की समाचार संपादक रुचि दुआ अब हिंदुस्तान टाइम्स (डिजिटल) के साथ काम करेंगी। रुचि दुआ को डिजिटल पत्रकारिता में काम करने का दस साल से ज्यादा का अनुभव है। रुचि दुआ ने पत्रकारिता के क्षेत्र में अपने करियर की शुरुआत 'सीएनएन-आईबीएन' और 'एनडी टीवी' में बतौर प्रशिक्षु पत्रकार की थी। इसके बाद वे 'दैनिक भास्कर' समूह से जुड़ गईं। यहाँ करीब डेढ़ साल काम करने के बाद रुचि दुआ ने 'इंडिया टुडे' का दामन थाम लिया। करीब छह साल की पारी के दौरान यहाँ विभिन्न पदों पर काम करने के बाद वह 'इंडिया टीवी' के साथ बतौर सह समाचार संपादक जुड़ गईं। यहाँ करीब नौ महीने काम करने के बाद वह मई 2018 से 'इंडिया डॉट कॉम' में समाचार संपादक की भूमिका निभा रही थीं।

जागरण का उर्दू डिजिटल पोर्टल नये स्वरूप में

'जागरण प्रकाशन लिमिटेड' की डिजिटल शाखा ने उर्दू भाषा के डिजिटल पोर्टल इंकलाब डाटकाम को नये स्वरूप में प्रस्तुत किया है। न्यूज पोर्टल का उद्देश्य 'दैनिक जागरण' के उर्दू अखबार 'द इंकलाब' की ऑनलाइन मौजूदगी को दर्ज कराना है। वेबसाइट को नये स्वरूप में लोकार्पित किए जाने के मौके पर जाने-माने बालीवुड डायरेक्टर और लेखक मुदस्सर अजीज और कश्मीर की पहली महिला पायलट आयशा अजीज मौजूद थे। दोनों ने 'द इंकलाब' और 'मिड-डे' की टीम के साथ केक काटा और जागरण समूह को इसके लिए शुभकामनाएँ दीं। इस मौके पर 'द इंकलाब' के संपादक शाहिद लतीफ का कहना था, ''डिजिटल के इस दौर में इंकलाब डाटकाम को नये स्वरूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य न सिर्फ भारतवर्ष, बल्कि पूरी दुनिया में उर्दू भाषी पाठकों के बीच अपनी पहुँच बनाना है।''

'जागरण डिजिटल' की सीओओ रचना तंवर

का कहना है, ''देश में डिजिटल सामग्री के उपभोग की बात करें तो आज के समय में भारतीय भाषाएँ इसकी बढ़ोतरी में मुख्य भूमिका निभा रही हैं। इस वेबसाइट का मकसद उन पाठकों की जरूरतों को पूरा करना है, जो उर्दू भाषा में सामग्री पढ़ना चाहते हैं।

स्मृति शेष

राजू भारतन

फिल्म इतिहासकार और क्रिकेट पत्रकार राजू भारतन का लंबी बीमारी के बाद निधन हो गया। वह 86 साल के थे। राजू भारतन साप्ताहिक मैगजीन द इलेस्ट्रेटेड वीकली आफ इंडिया से करीब 42 साल तक जुड़े रहे थे। खुशवंत सिंह, एमवी कामत, प्रीतिश नंदी और अनिल धारकर जैसे दिग्गज पत्रकारों के साथ काम किया। इस मैगजीन में लंबी पारी के दौरान उन्होंने दो क्रिकेट विशेषांक भी निकाले थे, जिन्होंने 4.05 लाख और 3.8 लाख के प्रसार का आँकड़ा भी छुआ था।

रवि सुबैय्या

मुंबई के स्वतंत्र पत्रकार रवि सुबैय्या का निधन हो गया है। नवी मुंबई के रहने वाले 51 वर्षीय सुबैय्या ने पोलियो से ग्रस्त होने के बावजूद अपनी पढ़ाई पूरी की और 'एनएमटीवी' नाम से केबल टीवी इंफॉर्मेशन सेवा शुरू की। वह कई एनजीओ से जुड़े हुए थे और प्रेरणादायक भाषण देने के लिए जाने जाते थे। रवि के परिवार में पत्नी और दो बेटियाँ हैं।

राजेश शर्मा

'लाइव इंडिया' चैनल के पूर्व मुख्य कार्यकारी अधिकारी राजेश का निधन हो गया है। उन्होंने देहरादून के अस्पताल में आखिरी साँस ली। राजेश शर्मा के परिवार में पत्नी, बेटा और बेटी हैं। उनकी पत्नी देहरादून में जबकि बेटा-बेटी विदेश में रहते हैं।

(Email : 123dwivedi@gmail.com)

ज्ञानतीर्थ सप्रे संग्रहालय

यूट्यूब पर प्रोफे. कृपाशंकर चौबे की डाक्यूमेंट्री

भोपाल के माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान पर वरिष्ठ पत्रकार तथा महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के जनसंचार विभाग के अध्यक्ष और मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ के अधिष्ठाता प्रोफे. कृपाशंकर चौबे ने वृत्तचित्र (डाक्यूमेंट्री) का निर्माण किया है। इसका शीर्षक है- 'ज्ञानतीर्थ सप्रे संग्रहालय'। यह वृत्तचित्र यूट्यूब पर उपलब्ध है। इसके अलावा, इस डाक्यूमेंट्री को महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर मीडिया गैलरी में भी देखा जा सकता है।

वृत्तचित्र में विजयदत्त श्रीधर द्वारा सप्रे संग्रहालय की स्थापना से लेकर उसके अद्यतन विकास और वैशिष्ट्य को रेखांकित किया गया है। इसमें सर्वश्री शंभुदयाल गुरु, रमेशचंद्र शाह, प्रभाष जोशी, राजेंद्र माथुर, अच्युतानंद मिश्र, रामबहादुर राय, राहुल देव, हरिवंश, गिरीश्वर मिश्र, जगदीश उपासने, पुष्पेंद्रपाल सिंह प्रभृति विद्वानों की प्रतिक्रियाएँ दर्ज हैं।

वृत्तचित्र में सिनेमेटोग्राफी नरेंद्र कुशवाहा, दयानंद कुम्हरे, मिथिलेश राय और उमेश शर्मा की है। वायस ओवर डा. तारा दूगड़ की है। संपादन हेमंत दुबे ने किया है। पटकथा, निर्माण एवं निर्देशन कृपाशंकर चौबे का है। गौरीशंकर रैणा, संदीप कुमार दुबे और श्रुति अवस्थी ने निर्माण में सहयोग किया है।

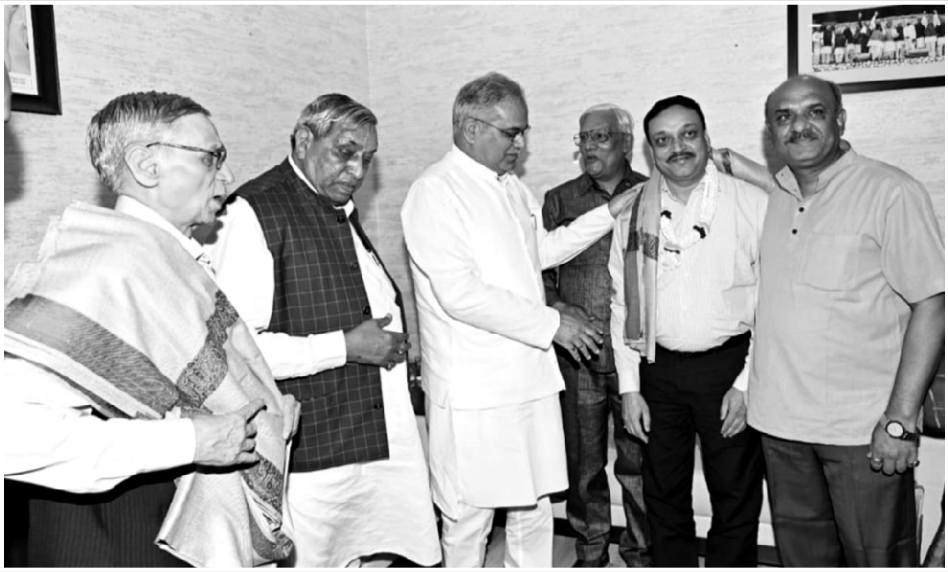

लोक संस्कृति मर्मज्ञ एवं छत्तीसगढ़ की जनजातीय कला के पारखी-संरक्षक श्री निरंजन महावर का विपुल साहित्य संग्रह सप्रे संग्रहालय को सौंपने वाले श्री मनीष महावर का सप्रे संग्रहालय की ओर से मुख्यमंत्री श्री भूपेश बघेल ने सम्मान किया।

24 फरवरी को माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान भोपाल के संस्थापक-संयोजक विजयदत्त श्रीधर और आरंभ से ही सप्रे संग्रहालय से जुड़े पूर्व मंत्री श्री सत्यनारायण शर्मा ने मुख्यमंत्री श्री भूपेश बघेल को छत्तीसगढ़ की धरती पर गांधी के ग्राम स्वराज की अवधारणा को मूर्त रूप देने में जुटे मुख्यमंत्री श्री भूपेश बघेल को मानपत्र, शाल एवं श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया। उन्हें सप्रे संग्रहालय द्वारा प्रकाशित पत्रकारिता की पुस्तकों का सेट भी भेंट किया गया।

..... निरंतर अंतिम कवर

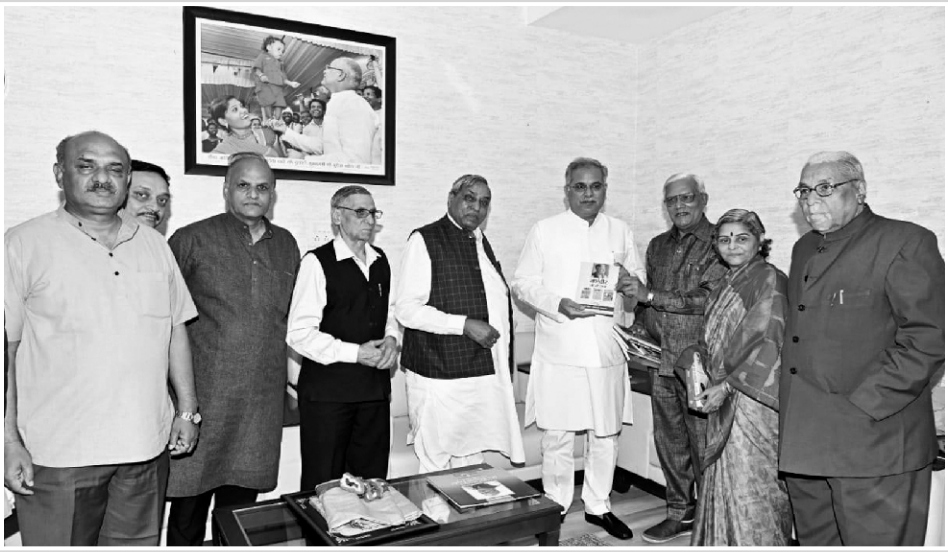

मुख्यमंत्री श्री भूपेश बघेल ने 'कर्मवीर' की शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित 'कर्मवीर के सौ साल' संदर्भ ग्रन्थ का विमोचन किया। सम्पादक श्री विजयदत्त श्रीधर ने श्री बघेल को यह पुस्तक भेंट की।

सप्रे संग्रहालय द्वारा प्रकाशित राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, भारतीय संस्कृति और अध्यात्म के परम प्रवक्ता स्वामी विवेकानन्द और महानायक नेताजी सुभाषचन्द्र बोस द्वारा धर्म की सुसंगत व्याख्या के पोस्टरों का मुख्यमंत्री श्री भूपेश बघेल एवं अन्य उपस्थित महानुभावों ने विमोचन किया।

छत्तीसगढ़ के वरेण्य पत्रकार श्री रमेश नैयर को मुख्यमंत्री श्री भूपेश बघेल के हाथों से 'कर्मवीर सम्मान' में प्रशस्ति पत्र, शाल एवं कलम भेंट किए गए। लोक संस्कृति मर्मज्ञ और जनजातीय कला के पारखी एवं संरक्षक कीर्तिशेष निरंजन महावर का समूचा साहित्य संग्रह (हिन्दी और अँगरेजी की 5203 पुस्तकें) सप्रे संग्रहालय को भेंट करने वाले उनके सुपुत्र श्री मनीष महावर को भी मुख्यमंत्री ने सम्मानित किया। इस अवसर पर कर्मयोगी पं. माधवराव सप्रे के अनन्य सहयोगी बाबू मावलीप्रसाद श्रीवास्तव द्वारा लिपिबद्ध पुस्तक 'सप्रे स्मारक संग्रह' की प्रति उनके सुपुत्र डा. शंकरप्रसाद श्रीवास्तव ने मुख्यमंत्री को भेंट की।

मुख्यमंत्री श्री भूपेश बघेल ने श्री रमेश नैयर को 'कर्मवीर सम्मान' प्रदान किया।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक विजयदत्त श्रीधर द्वारा दृष्टि आफसेट, भोपाल से मुद्रित तथा माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल (म.प्र.) 462 003 से प्रकाशित। संपादक : विजयदत्त श्रीधर